गिरीश-कृत

[गिरीश-प्रणीत]

लेखक-मण्डल
गञ्ज, इलाहाबाद
से
प्रकाशित

प्रथम संस्करण,
पन्द्रह सौ प्रतियाँ
मूल्य एक रुपया

मधुपान

[१]

त्रिवेदी नारायण को उपन्यास पढ़ने का बड़ा शौक़ था। आज ही उसने 'एक रात में तीन क़त्ल' नाम का उपन्यास मँगाया था। परीक्षा की पुस्तकों को ताक़ पर रख कर उसी को पढ़ने में उसने भूख-प्यास भुला दी थी। धीरे-धीरे उपन्यास समाप्त हो गया, परन्तु समाप्त होकर भी त्रिवेदीनारायण के मस्तिष्क पर अपना अधिकार

बनाये रखा। उपन्यास की नायिका कामिनी देवी और नायक प्रफुल्ल कुमार का चित्र उसकी आँखों के सामने घूमने लगा। शराब पीकर जैसे लोग नशे में उन्मत्त हो जाते हैं वैसे ही यह उपन्यास पढ़कर वह मतवाला हो गया। सोचने लगा कि कामिनी देवी जैसी नायिका के दर्शन कहां हो सकेंगे। इसी समय त्रिवेदीनारायण का समवयस्क सहपाठी रामकिशोर आ गया।

रामकिशोर ने पूछा—क्यों दोस्त, वह उपन्यास पढ़ लिया हो तो मुझे दे दो।

त्रि०—पढ़ तो लिया है, लेकिन—

'लेकिन' के आगे भी कुछ कहो, एकाएक चुप क्यों हो गये ?—रामकिशोर ने त्रिवेदी नारायण को रुकते हुए देखकर तुरन्त ही कहा।

त्रिवेदीनारायण ने उत्तर दिया—लेकिन मैं तुम्हें सलाह दूँगा कि जब तक अपने लिए एक प्रेमिका की तलाश न कर लो तब तक उस उपन्यास को पढ़ने में हाथ न लगाओ। उपन्यास क्या है, अँगूरी शराब का मादक प्याला है, मेरी तबियत तो ऐसी बेचैन हो गई है कि कुछ पूछो मत। कामिनी देवी की शोख़ी, छेड़ख़ानी, और चंचलता तबियत पर ऐसा असर करती है कि उसे बिना देखे सन्तोष नहीं हो सकता। फिर, जब

उसका पता ठिकाना मालूम रहने पर भी यह ख़याल आता है कि उसे ढूँढ़ नहीं सकते तब तो मौत हो जाती है। राम किशोर, मेरी बात मानो, चलो हम तुम एक प्रेमिका ढूँढ़ें और उसी का नाम कामिनी देवी रख लें, तब इस उपन्यास का पूरा मज़ा मिलेगा।

रामकिशोर ने कहा—बात तो सच है, लेकिन हमारे लिए प्रेमिका कहां रखी है? और ढूँढ़ने कहां जायँ? शाक-भाजी ढूँढ़ना हो तो सब्ज़ी-मण्डी में ढूँढ़ आवें, लेकिन प्रेमिका तलाशने कहां जायँ?

त्रिवेदीनारायण बोला—मैं बताऊँ, चलो आज दालमण्डी की तरफ़ चलें, प्रेमिकाओं का तो वही अड्डा है।

अजी, वे प्रेमिकाएँ नहीं हैं, उनके चक्कर में एक बार पड़े कि प्राणों पर बीती। प्रेमिका कोई और ही चीज़ है। सुनते हैं, प्रेमिकाएँ अपने प्रेमियों के लिए प्राण तक अर्पित कर देती हैं।

कोई बात तय न होती देखकर त्रिवेदीनारायण ने कहा—आख़िर किया क्या जाय?

रा०—पहले उपन्यास तो मुझे दो। प्रेमिका ढूँढ़ने के लिए तो सारी ज़िन्दगी पड़ी हुई है।

त्रिवेदीनारायण ने उपन्यास लाकर रामकिशोर को दे

दिया। रामकिशोर ने तुरन्त ही प्रथम पृष्ठ खोल कर देखा। तबियत उलझ गई। वहां ठहरना अखरने लगा और कोई बातचीत न करके शीघ्र ही वह पुस्तक लिए हुए किसी एकान्त स्थान की ओर चला गया।

[२]

स्कूल में मास्टर साहब गणित पढ़ा रहे थे। और लड़कों का ध्यान मास्टर साहब के व्याख्यान की ओर था या नहीं यह तो ठीक नहीं कहा जा सकता, लेकिन त्रिवेदीनारायण और रामकिशोर का तो निश्चित रूप से नहीं था। क्योंकि रामकिशोर उसी उपन्यास को पढ़ने में लगा था और त्रिवेदीनारायण उसके पढ़े हुए अंश के सम्बन्ध में तरह तरह के सवाल करने में। एकाएक मास्टर साहब ने त्रिवेदीनारायण से पूछा—क्यों जी, तुम समझ गये ?

त्रिवेदीनारायण चौंक कर उठा और बोला—जी हां।

मा० सा०—क्यों जी रामकिशोर! तुम भी समझ गये?

रामकिशोर पुस्तक पढ़ने में लीन था। उसने सुना ही नहीं।

मास्टर साहब ने ज़ोर की आवाज़ में पूछा—रामकिशोर तुम किस दुनिया में हो?

एकाएक रामकिशोर हड़बड़ा उठा।

मास्टर साहब ने चिल्लाकर कहा—तुम क्या कर रहे थे? ठीक ठीक बताओ।

रामकिशोर ने अब तक पुस्तक डेस्क में रख दी थी। मुख से विषाद का भाव प्रकट करते हुए उसने कहा—मास्टर साहब! मेरे पिता जी बहुत बीमार हैं, घर से चिट्ठी आई है, वही देख रहा था।

मास्टर साहब ने कुछ नरम पड़ कर कहा—तुम्हें क्लास के बाहर जाकर चिट्ठी पढ़नी चाहिए थी।

रामकिशोर ने ग़लती स्वीकार कर ली।

कुछ सहानुभूति के स्वर में मास्टर साहब ने फिर पूछा—क्या ज़्यादा बीमार हैं?

रामकिशोर ने उत्तर दिया—चाचा ने छुट्टी लेकर चले आने को लिखा है।

मा० सा०—अच्छा बैठो।

त्रिवेदीनारायण ने सिर नीचा करके मुसकराते हुए धीरे से कहा यार तुमने अपनी और मेरी जान बचाई तो खूब नहीं तो कौन जाने आज बेत लग जाते, कम से कम बेंच पर तो खड़े होना ही पड़ता, डाँट फटकार तो सुननी ही पड़ती।

रामकिशोर ने भी उसी तरह उत्तर दिया—देखते जाओ, किताबों में पढ़ते आ रहे हैं कि सच बोलो, लेकिन सच बोलें तो यहां बदन में दस-पन्द्रह दिन हल्दी लगानी पड़े।

जैसे-तैसे स्कूल बन्द हुआ। उसी दिन रात को बहुत देर तक पढ़ कर रामकिशोर ने उपन्यास समाप्त कर दिया। भेंट होने पर त्रिवेदीनारायण ने पूछा—कहो भाई, कामिनी देवी कैसी नायिका है?

रा०—भाई, कुछ पूछो मत, कामिनी देवी ने तो मुझे ही क़त्ल कर डाला। ख़याली कामिनी देवी ने तो यह ग़ज़ब ढाहा, अगर कहीं मूर्त्तिमती कामिनी देवी दिखाई पड़ जायँगी तो फिर ग़रीबों की कैसे गुज़र होगी। बेचारा प्रफुल्लकुमार अगर इस अजीब औरत के फन्दे में पड़ कर तबाह हो गया तो क्या अचरज की बात है।

त्रि०—अजी इसे तबाह होना नहीं कहते, यही तो ज़िन्दगी का लुत्फ़ है। मरते सभी हैं, एक वे हैं जो सूखी ज़िन्दगी बिता कर अशान्ति, अतृप्ति के नरक में दुख भोगते हैं और दूसरे वे हैं जो जीवन का पूरा रस पीकर शान्ति से स्वर्ग में शयन करते हैं।

रामकिशोर ने मुसकरा कर कहा ये तो बड़ी लच्छेदार बातें हैं, कहा किससे सीख लीं ?

अपनी तबियत से सीखीं, यह तो साधारण समझने की बात है कि दुनिया का आनन्द लूटने ही के लिए हमने यह चोला पाया है।

रा०—तो जब यही बात है तो हम लोग गणित, भूगोल, इतिहास आदि के चक्कर में क्यों पड़ें ? चलो एक बार मौज ही उड़ाई जाय।

त्रि०—हां, लेकिन बनारस में मां-बाप के अधीन रहकर तो मौज उड़ाना सम्भव नहीं है। बात-बात में डाँट पड़ती रहती है, घर हो या स्कूल, कहीं भी हमें चैन नहीं मिलता है, ऐसा क्यों न करो कि एक बार कलकत्ते भाग चलें। सुना है, वहां मामूली चपरासियों और गाड़ीवानों के साथ औरतें भाग खड़ी होती हैं। यदि यह बात सच है तो वहाँ हमें प्रेमिकाएँ अवश्य ही मिलेंगी साथ ही एक बात और होगी। घर वाले भी ज़रा चौकन्ने हो जायँगे और बाद को इतनी डाट-डपट नहीं रखेंगे जितनी अभी रखते हैं।

रा०—अच्छी बात है, चलेंगे।

[२]

दूसरे दिन रविवार को कुछ बहाना करके दोनों साथी अपने-अपने घरवालों को कुछ भी बताये बिना स्टेशन को रवाना हो गये। शीघ्र ही दोपहरवाली गाड़ी मिल गई। ड्योढ़े दर्जे में उनके बैठ चुकने के दस-पन्द्रह मिनटों बाद गाड़ी कलकत्ते की ओर भक-भक करती हुई चल पड़ी। दोनों मित्रों के पास कहानी के मासिक पत्र और उपन्यास काफ़ी संख्या में मौजूद थे। कुछ दूर तक अपने-अपने बिस्तरों पर लेटे हुए वे वही पुस्तकें पढ़ते चले।

पढ़ने से तबियत ऊब गई तो रामकिशोर ने कहा भाई साहब ! मुझे इस बात का बहुत सन्तोष है कि मेरा जो विचार कुछ दिनों से है वही अब आपका भी हो रहा है। मैं बहुत दिनों से यह सोचता आ रहा था कि जिसमें मनुष्य को इतना आनन्द आता है, जिससे उसे इतना आराम मिलता है उसे लोग बुरा क्यों कहते हैं, उसके पास जाने से इनकार क्यों करते हैं। झूठ बोलकर संसार में कितना फ़ायदा उठाया जा सकता है, इसका तजरबा मैं अनेक बार कर चुका हूँ, मेरा ख़याल है कि औरतों के साथ दोस्ती करने से भी बहुत लाभ होता होगा, क्योंकि जिस चीज़ का ख़याल ही होने से तबियत आनन्द से भर जाती है वह पूरा-पूरा अपने पास आ जायगी तब कितना आनन्द आवेगा, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

त्रिवेदीनारायण ने कहा—तो बताओ, कलकत्ते पहुँच कर किस तरह कोई प्रेमिका ढूँढ़ेंगे ? कहीं ऐसा न हो कि मार खा जायँ। परदेस ठहरा, वहां अपना कोई मददगार थोड़े ही बैठा है।

रा०—मददगार वहां कोई है ही नहीं ! क्या कहते हो, भाई ! अरे तुम्हारी प्राणेश्वरी और मेरी भाभी के पिता वहीं तो रहते हैं। जब कोई आफ़त हो पड़ जायगी तो उनसे मदद लेंगे।

त्रि०—वाह खूब कहो! प्रेमिका की तलाश में मार खायें या पुलीस के चक्कर में पड़े तो ससुर से सहायता लें! खास कर उस अवस्था में, जब कि अभी ब्याह हुए भी अधिक दिन नहीं हुए हैं। अजी मैं तो ऐसी दुर्गति होने की नौबत आने पर मर जाना पसन्द करूँगा, किन्तु उनसे सहायता की बात तो कोसों दूर, जहां तक अपना बस चलेगा उनके कानों तक ख़बर भी न जाने दूँगा। परन्तु ज़रा सोचो तो रामकिशोर, यदि ऐसी घटना घट ही गई तो ख़बर पर मैं पहरा तो बैठा नहीं सकूँगा। कलकत्ता शहर हिन्दी-समाचार-पत्रों का घर ठहरा, और वे हिन्दी के प्रेमी हैं, समाचार-पत्र, मासिक पत्र आदि न पढ़ें तो उनका खाना न हज़म हो। ऐसी अवस्था में तो मेरे लिए डूब मरने की बात हो जायगी। बहुत अच्छा किया जो तुमने याद दिला दिया, भाई रामकिशोर! कलकत्ते तो नाहक़ आये, यहां हाथ पैर जकड़ उठेंगे, जाना ही था तो बम्बई जाते।

रामकिशोर ने उत्तर दिया—भाई, बात तो बहुत सही कहते हो। लेकिन फिर भी कलकत्ते से एक फ़ायदा हो सकता है।

त्रि०—सो क्या?

रामकिशोर ने मुसकराते हुए जवाब दिया—यही कि कलकत्ते में अपने उद्योग में निराशा और असफलता होने पर भी आँसू पोंछने का प्रबन्ध हो सकता है, लेकिन बम्बई में विफल होते तो बैरंग ही घर वापिस जाना होता।

त्रि०—आखिर कुछ कहोगे भी कि इसी तरह झूले में झुलाते ही रहोगे ? जो लोग पहेलियों में बोलते हैं उन्हें मैं पसन्द नहीं करता।

यह कह कर त्रिवेदीनारायण ने ऐसी मुख-मुद्रा बनाई जैसे उसे अपनी उत्सुकता शान्त करने की कोई इच्छा न रह गयी हो।

रामकिशोर ने परिहासपूर्वक कहा—भाई तुम अगर मुझे न पसन्द करोगे तो मेरी कौन बड़ी हानि हो जायगी ? तुम कोई प्रेमिका भी तो नहीं हो, जिससे मैं डरूँ।

यह सुनकर त्रिवेदीनारायण हँस पड़ा और उसकी क्षणिक उदासीनता इसी हँसी में डूब गई। रामकिशोर भी हँसने लगा। फिर बोला—भाई मेरा मतलब कहने का यह है कि अगर कोई और प्रेमिका न मिलेगी तो जिस प्रेमिका पर तुम्हारा पूरा अधिकार है और तुम्हारी वजह से जिस पर मेरा भी थोड़ा बहुत अधिकार है ही, वह तो कहीं नहीं गई है।

त्रिवेदी नारायण बड़े ज़ोर से अट्टहास कर पड़ा। उसकी ऊँची हँसी के साथ अपनी हलकी हँसी को संयुक्त करते हुए रामकिशोर ने कहा—हां भाई, सोचो न, ठीक ही तो कह रहा हूँ। कलकत्ते चलना हर तरह से लाभकारी ही होगा।

—o—

[४]

सारी रात चलकर जब गाड़ी कलकत्ते के निकट पहुँची तब एक विचित्र घटना घट गई।

सबेरा हो गया था। रामकिशोर जल के लिए नीचे उतरा। ग़लती उसने यह करदी कि जिस स्टेशन पर गाड़ी कम ठहरती थी वहीं यह समझ कर कि वह ज़रुरत के लिए काफ़ी देर ठहरेगी उसने बहुत इतमीनान से काम लिया। उसकी यह प्रमाद निद्रा तब भंग हुई जब गाड़ी ने सीटी दे दी

और वह अभी हाथों में मिट्टी लगाये हुए पाइप के पास से भीड़ हटने की प्रतीक्षा ही कर रहा था। एकदम से हड़बड़ा कर उसने पाइप पर अधिकार करने की कोशिश की, जिसका परिणाम यह हुआ कि एक छोटा सा बच्चा धक्का खाकर गिर पड़ा। यह होने पर भी रामकिशोर को पानी मिलने में आसानी न हो सकी, गिरे हुए बच्चे की क्रुद्ध माता ने राम-किशोर के साथ वाग्युद्ध छेड़ दिया। इस कलह में गाड़ी छूट गई और ज्यों का त्यों हाथ में मिट्टी लगाये हुए, रामकिशोर त्रिवेदी नारायण को खिड़की में से सिर निकाल कर घबराहट से भरे स्वर में शीघ्र डब्बे में चढ़ आने के लिए बारम्बार चिल्लाता देखकर भी पहले तो केवल हक्का बक्का सा रह गया और फिर जब दौड़कर पागलों की तरह प्रयत्न करने भी लगा तो सफल न हो सका। शीघ्र ही गाड़ी अपनी पूरी तेज़ी में आगयी और रामकिशोर को हाथ मींज कर रह जाना पड़ा।

पाइप के पास बच्चा अब भी रो रहा था और मां उसे चुप करा रही थी। निराशा में डूबे हुए राम किशोर को वहां दुबारा हाथ धोने को आया देख उसने कहा—क्यों भैया, बच्चे को रुलाया भी और गाड़ी भी न पायी।

रामकिशोर इस व्यंग से कट सा गया।

---

[५]

पनी कन्या कुसुम का विवाह करने के बाद, तीन महीने की छुट्टी बिताकर, जब श्यामसुन्दर मिश्र देश से नौकरी पर कलकत्ते को लौटे, तो मित्रों और प्रेमियों की एक छोटी सी दावत और साथ ही एक कवि-सम्मेलन का आयोजन उन्होंने कर डाला। इस बार की अवाई में उन्होंने एक नया ाये पर लिया। यह मकान चौरस्ते पर तथा सुवि-

शाल होने के कारण इस प्रकार के उत्सवों के लिए विशेष उपयुक्त था। नीचे का खण्ड एक तमोलिन ने ले रखा था, जिसकी दूकान की सजावट उसके शारीरिक लावण्य के अनुरूप ही थी।

मिश्रजी के यहाँ दावत का दिन आ पहुँचा। धूम मच गई। कलकत्ते के अच्छे-अच्छे संगीतज्ञों और कवियों के आने से उत्सव की शोभा बढ़ चली। पान के बीड़े पहुँचाने का ठेका उक्त तमोलिन ने ले लिया था और इसके प्रबन्ध का भार स्वयं कुसुम पर था।

तमोलिन के हाथ से बीड़े स्वीकार करते हुए कुसुम ने मुसकराकर उससे पूछा—बीड़े अच्छे तो हैं न ?

अच्छे न हों तो चाहे जो दण्ड दे लेना—यह कहकर तमोलिन ने भी मुसकरा दिया।

मुसकराहट दो हृदयों को एक कर देने के लिए अचूक गारे का काम देती है और कुसुम सहज ही तमोलिन की ओर आकर्षित हो गई।

तमोलिन चलने लगी तो कुसुम ने पूछा—तुम्हारा नाम क्या है तमोलिन ?

तमोलिन के होठों पर फिर मुसकान की एक हलकी रेखा आ गई। उसने उत्तर दिया—बहुई, मेरा नाम तो रूपकुमारी है, लेकिन लोग मुझे 'रूपा' कहकर पुकारते हैं।

यह कहकर रूपा चली गई और कुसुम तश्तरियों में पान के बीड़े, इलायची, गरी के टुकड़े, लौंग आदि चीज़ें क़ायदे के साथ रखने लगी।

उत्सव समाप्त होने के बाद भी रूपा पान देने के लिए मिश्रजी के घर में प्रायः आती जाती रहती थी और कुसुम की माँ की अपेक्षा कुसुम ही से उसे अधिक काम पड़ने के कारण उससे बातचीत करने का मौक़ा भी काफ़ी मिलता था। इस प्रकार धीरे-धीरे रूपा और कुसुम की घनिष्ठता बढ़ चली। रूपा ने स्वयं भाभी बनकर कुसुम को ननद बना लिया और तरह-तरह के हँसी-मज़ाक के लिए रास्ता साफ़ कर लिया।

एक दिन रूपा ने पूछा—क्यों ननदजी, तुमने ननदोई को देखा तो तुम्हें अच्छा लगा या ख़राब ?

कुसुम ने हँसती हुई आँखों की रखवाली करनेवाली धनु-षाकार भौंहों को तानकर कहा—तुम बस मार खाने वाली हो। देखो, अब जो तुमने फिर कभी यह सवाल किया तो मैं तुम्हें मारे बिना नहीं छोड़ूंगी। समझ रखो, तुम्हारे ऊपर चपत लगाने का मेरा उतना ही अधिकार है जितना भाई साहब का है।

उस दिन रूपा हँसती हुई चली गई। कुसुम ने समझा कि मेरी जीत हो गई। रूपा ने मन ही मन कहा—इसी प्रकार हारते-हारते अन्त में मेरी जीत होगी।

रूपा फिर आई तो फिर उसने वही बात की और कुसुम ने उसे उसी प्रकार प्यार भरे शब्दों में डाँटा। उस दिन भी रूपा हँसती हुई और कुसुम को विजय की मदिरा पीने का अवसर देती हुई चली गई।

इसके बाद रूपा कई दिनों तक नहीं आई। कुसुम ने उसे बुलवा भी भेजा तो बीमार होने का बहाना करके वह अपने घर से टस से मस न हुई। कुसुम उसके लिए बहुत बेचैन हो गई। रूपा चाहती भी यही थी। उसकी बीमारी बीमारी नहीं थी, एक चाल थी। अन्त में जब वह गई तो कुसुम ने कई दिनों की कसर निकाल लेनी चाही। किन्तु, उसके बहुत छेड़ने पर भी रूपा ने यही कहा—ननद, दिक मत करो, तबियत अच्छी नहीं थी, सिर्फ़ तुम्हें देखने के लिए चली आई हूँ।

चंचल कुसुम ने कहा—भाभी, अगर तुम दिक़ होने से डरती हो, तो तुम मेरी भाभी क्यों बनीं? भाभी का तो काम ही दिक़ होना और ननद का दिक़ करना है। यह तो वैसे ही हुआ कि शादी तो हुई, लेकिन जब पति-पत्नी से मिलने के लिए जाय तो वह कहे कि अजी मुझे परेशान मत करो, मैं तो तुम्हारी सूरत से नफ़रत करती हूँ। भाभी तुम्हारे और कोई ननद तो नहीं है?

रूपा ने उत्तर दिया—नहीं, इसीलिए तो तुम्हें बनाया। और, इसीलिए तुमने बनाने में ग़लती भी की। क्योंकि तुम्हें

किसी ननद का तजरबा नहीं था। तुमने समझा होगा कि कुसुम एक सीधी-सादी लड़की है, चलो इसको ख़ूब चिढ़ाया करूँगी—कुसुम ने कहा।

रूपा—ठीक कहती हो ननद! मैंने ऐसा ही सोचा था। अब भविष्य में ऐसी ग़लती नहीं करूँगी। हाँ, एक बात तुमसे पूछूँ, नाराज़ तो न हो जाओगी बबुई!

कुसुम ने हँसकर कहा—भाभी तुम्हारा एक ख़ून माफ़ है। तुम जो चाहो सो पूछो।

रूपा—ननद, यहाँ कहीं कोई नहीं सुन रहा है, फिर भी अगर किसी के सुनने का डर हो तो मेरे कान में कह सकती हो। मैं यह जानना चाहती हूँ कि क्या तुमने किसी से प्रेम भी किया है?

कु०—प्रेम सभी से करती हूँ, क्या किसी से दुश्मनी रखती हूँ, पगली।

रूपा—ऐसी बात नहीं ननद! कभी किसी पुरुष से प्रेम किया है?

कु०—पुरुष किसे कहते हैं भाभी?

यह कहकर कुसुम हँसने लगी।

रूपा ने उत्तर दिया—पुरुष उस जानवर का नाम है, जिसके दो हाथ और दो पैर होते हैं और जिस पर स्त्रियाँ अपने प्राण निछावर करती हैं।

कुसुम ने मुसकराकर कहा—तो मैंने तो कभी किसी जानवर से न प्रेम किया न अदावत ही की, भाभी। तेरा हाल विचित्र है, तू किसी जानवर से भी मुहब्बत लगा बैठी हो तो कोई अचरज की बात नहीं।

रूपा—मेरा क्या पूछती हो ननद ! मैं तो पान के बीड़े खिलाती हूँ। जितने मुए पान खाने आते हैं, सब समझते हैं कि मैं उनसे प्रेम करती हूँ। लेकिन तुम्हारी बात और है, तुम तक किसी की पहुँच नहीं, ऐसी दशा में भी अगर तुम्हारी तबियत किसी से लग जाय तो मज़ा आ जाय, मेरी क़ीमत बढ़ जाय और तुम्हें चिढ़ाने के लिए भी मुझे आराम हो जाय।

कु०—भाभी तुम तो अभी मेरी दृष्टि में बेशक़ीमत हो, तुम्हारी कोई क़ीमत आँकी नहीं जा सकती।

रूपा—हाँ, लेकिन जब प्रेम की पीड़ा तुम्हारे हृदय को मथेगी, तब मैं ही तुम्हें याद आऊँगी। इसलिए उस समय मैं तुम्हारे लिए और की और हो जाऊँगी।

कु०—क्या प्रेम में पीड़ा भी होती है, भाभी ? उसमें तो मिठास होनी चाहिए।

रू०—ननद ! ये बातें बताने की नहीं हैं, ये अनुभव करने की हैं। जब कहीं दिल उलझन में पड़ जायगा तब मुहब्बत के मीठे-तीते स्वाद का तुम्हें पता चल जायगा।

कु०—लेकिन यह होगा तब वह होगा—यह सब कहने

ने कोई लाभ नहीं है। मैं तो इस वस्तु को आज जानना चाहती हूँ।

रू०—अच्छा, अब आज जाने दो, देर हो रही है, सास नाराज़ होती होंगी, कल तुम्हें बताऊँगी।

कु०—यह क्यों नहीं कहती कि भाई साहब नाराज़ होते होंगे, झूठ-मूठ बूढ़ी को बदनाम क्यों करती है?

रूपा हँसती हुई चली गई।
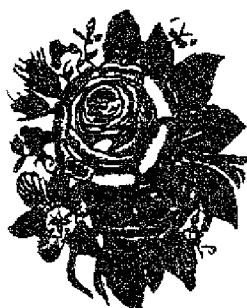
[६]

कई दिनों के बाद रूपा फिर आई तो अपने साथ एक लिफ़ाफ़ा ले आई। दूर ही से लिफ़ाफ़ा कुसुम को दिखाकर उसने कहा—ननद, प्रेम की पीड़ा इसी में बन्द है, देखना चाहो तो देख सकती हो।

कुसुम की उत्कण्ठा बढ़ गई। उसने लिफ़ाफ़ा रूपा के हाथ से लेना चाहा। किन्तु रूपा उसे सहज में देनेवाली नहीं थी। कुसुम की उत्कण्ठा को ख़ूब बढ़ाकर, छीना-झपटी की नौबत

ने पर ही रूपा ने लिफ़ाफ़ा उसे दिया। फाड़कर वह पढ़ने गी। उसमें एक कविता थी—

प्राणेश्वरि!

मूर्त्ति मधुर मनहारिणि तेरी
देखी है मैंने जब से।
मन्मथ मथित हृदय है मेरा
नेक न कल पड़ती तब से।
सरल चितौन दिखाकर तू ने
घायल कर डाला मुझको।
निशिदिन सोचा करता हूँ बस
कैसे पाऊँगा तुझको।
थोड़े दिन के बाद यहाँ से
हाय चला मैं जाऊँगा।
तू गड़ गई कलेजे में है
कैसे हाय भुलाऊँगा।
कह यदि तू न मिलेगी मुझको
तो क्या गति मेरी होगी।
आठों याम कराल भुजंगी
याद मुझे तेरी होगी।

लज्जा औ संकोच कहाँ लौं
कब लौं तुझको टोकेंगे ?
कितने बार बता प्राणेश्वरि !
वे तेरा मग रोकेंगे ?
अधिक विलम्ब न कर सुकुमारी,
सारे बन्धन तोड़ अभी।
व्याकुल प्रेमिक पास चली आ
भय-भावों को छोड़ सभी।

तुम्हारा प्रेमी
भ्रमर

यह कविता पढ़कर कुसुम ने पूछा—भाभी यह कविता किसने लिखी है और किसको लिखी है ?

रूपा ने उत्तर दिया—एक प्रेमी ने अपनी प्राणेश्वरी के पास लिखकर भेजी है।

कु०—प्राणेश्वरी तो तुम हो, यह तो मैं जानती हूँ, किन्तु यह प्रेमी कौन है ?

रू०—प्राणेश्वरी मैं नहीं हूँ ननद, वह तो तुम हो सकती हो, क्योंकि वास्तव में पत्र उसका है जो लिफ़ाफ़ा फाड़े और पढ़े। मैंने तो बन्द लिफ़ाफ़ा पाया।

कुसुम ने रूपा के इस कथन को सुनकर मुसकरा दिया। फिर बोली—अच्छा यह झगड़े की बात है। यह बताओ कि वह प्रेमी कौन है?

रू०—एक पागल आदमी।

कुसुम ने अचरज का भाव प्रकट करते हुए पूछा—अरी, प्रेमी भी है, पागल भी है, कवि भी है—यह विचित्र आदमी कौन सा है? ज़रा मुझे दिखा दोगी भाभी?

रू०—हाँ, हाँ, दिखा दूँगी।

कु०—लेकिन शर्त यह है कि वह मुझे न देखने पाये।

रूपा ने पान की लाली से लाल अधरों पर मुसकराहट की चन्द्रिका रखते और मटकते हुए कहा—बीबी, तुम्हें तो उसने पहले ही से देख लिया है, नहीं तो यह चिट्ठी क्यों लिखता? कभी छत पर खड़ी होकर तुमने संध्या समय उस प्रेम के प्यासे को दर्शन देकर तड़पा दिया है।

कुसुम चुप हो गई।

उस दिन उतना काम यथेष्ट समझ कर रूपा चली गई। उसके चले जाने के बाद कुसुम ने उस कविता को बार-बार पढ़ना शुरू किया, क्योंकि रूपा के सामने संकोच के कारण उसने ज़रा सा देख कर ही उस कविता को अलग कर दिया था। उस दिन चार बजे ही से कुसुम ने मुँडेली छत पर बार-बार जाना शुरू कर दिया, वहाँ कभी इधर कभी उधर खड़ी होकर

वह उस प्रेमी की तलाश मे रहती। कई बार तो सामने ही सूर्य की किरणों ने उस परेशान करके वहाँ से हटा दिया, किन्तु, जब सूर्य के अस्त होने का समय आया, तब उसकी इस छोटी सी तपस्या का फल मिला सा जान पड़ा। उसने एक नवयुवक के मधुर रूप का दर्शन करके अपूर्व आनन्द लाभ किया। उसका लावण्य इतना मनोमोहक था कि उस पर से उसकी आँखें किसी प्रकार हटती ही नहीं थी। वह नवयुवक भी रह-रहकर कुसुम की ओर देख लेता था। ऐसा जान पड़ता था, मानों दोनों के मन एक अटूट बन्धन में बँध गये। परन्तु शीघ्र ही अँधेरा फैल गया। आँखों को जो यह स्वर्गीय आनन्द मिल रहा था, सो एकाएक लुट गया, घने अँधेरे ने दोनों के लिए एक दूसरे के अस्तित्व का ही लोप कर दिया। और जब चिरागों का प्रकाश आया भी तो मानो उसने साफ़-साफ़ कह दिया कि अपने-अपने कर्तव्यों की ओर ध्यान दो।

एक विचित्र वेदना का अनुभव करती हुई कुसुम नीचे आयी। उसके रोम-रोम से यही पुकार उठती थी कि यदि इस मनोहर मूर्त्ति को पाऊँ तो आँखों की पुतली पर बिठा लूँ। उसके जी ने न माना, घर के कामों को संभालकर, बहाने से फिर वहीं पहुँच गई, जहाँ से उस युवक के दर्शन होते थे। वह अब भी वहीं खड़ा था। इस बार तो कुसुम की दृष्टि, उसका मन, उसके पैर जैसे जकड़ से उठे। माँ आकर कहीं डाटने न लगें—

इस आशंका ने उसे होश में लाने की बड़ी चेष्टा की। लेकिन आज कुसुम ने प्रेम की जो ताज़ी शराब पी ली थी, उसका चसका अटूट था। अन्त में हुआ यह कि जब तक माँ ने आ कर दो-चार बातें कहीं नहीं, तब तक उसके पैर वहाँ से हिल न सके। गरमी में प्यासे के सामने से शीतल जल का कटोरा हटाने से उसे जो व्यथा होती है, उसी व्यथा का अनुभव करती हुई अधमरी सी होकर कुसुम माँ के साथ गई। उसने मन ही मन पूछा—क्या प्रेम की पीड़ा इसी को कहते हैं? जिसने मेरे पास प्रेम-पत्र लिखकर भेजा है, उसे भी क्या मेरे कारण उतनी ही वेदना होती होगी जितना मुझे इस नवयुवक के कारण हो रही है ?

घर के कामों को बेगार की तरह जैसे-तैसे निपटाकर कुसुम ने उस पत्र की कविता-पंक्तियों को फिर देखना शुरू किया जो रूपा दे गई थी। उसने देखा कि उसमें के एक-एक शब्द स्वयं उसकी वेदना को प्रकट कर रहे थे और यदि कहीं अन्तर था तो स्त्री और पुरुष-वाचक विभक्तियों आदि में। उसने बड़ी आसानी से उस कविता का रूप इस प्रकार कर डाला—

प्राणेश्वर !

मूर्ति-मंजु औ मधुर तुम्हारी,
देखी है मैंने जब से।

मन्मथ-मथित हृदय है मेरा
नेक न कल पड़ती तब से ॥

सरल चितौन दिखाकर तुमने,
घायल कर डाला मुझको ।
प्रति पल सोचा करती हूँ बस,
कैसे पाऊँगी तुमको ॥

चले यहाँ से जाओगे तो,
कैसे धीरज पाऊँगी ।
तुम गड़ गये कलेजे में हो,
कैसे हाय भुलाऊँगी ॥

कहो मिलोगे मुझे नहीं तुम,
तो क्या गति मेरी होगी ।
आठो याम कराल भुजंगिनि सी,
विषाद-ढेरी होगी ॥

लज्जा औ संकोच कहाँ लौं,
कब लौं तुमको टोकेंगे ।
कितने बार कहो प्राणेश्वर,
राह तुम्हारी रोकेंगे ॥

अधिक विलम्ब करो मत प्यारे,
सारे बन्धन तोड़ अभी ।

व्यथित प्रेमिका के ढिग आओ,
भय-भावों को छोड़ सभी ॥

तुम्हारी प्रेमिका
कमल

इस कविता के तैयार हो जाने पर कुसम का जी फड़क उठा। उसने मन ही मन 'भ्रमर' को वह कविता भेजने तथा रूपा को उसके पास पहुँचाने के लिए धन्यवाद दिया। बारम्बार पढ़ते-पढ़ते वह कविता कुसुम को कण्ठस्थ हो गई। उस समय उसकी बहुत इच्छा हुई कि रूपा सामने होती, किन्तु यह समय उसे बुलाने का नहीं था। इसलिए जैसे-तैसे रात बिताने का ही उसने निश्चय किया।

[७]

दूसरे दिन दस बजे के बाद घर के कामों से छुट्टी पाते ही कुसुम ने रूपा को पान दे जाने का सँदेसा भेजा। रूपा तुरन्त ही आ पहुँची।

रूपा ने बैठते-बैठते पूछा—उस पत्र का कोई उत्तर लिखा है क्या बहुई?

एक हलकी मुसकराहट रूपा के अधरों और आँखों पर थी।

कुसुम ने कहा—उसका उत्तर तो मैं क्यों लिखती, किन्तु

सी को ताड़ मरोड़कर मैंने अपने काम के लायक़ बना लिया । मैं जिसे बताऊँ यदि मेरी इस कविता को उसी के पास पहुँचा दो, तो मेरी बहुत सहायता हो जाय भाभी ! बोलो रोगी मेरा काम ?

रूपा—क्यों नहीं करूँगी ? इतनी जल्दी तुमने प्रेम की पीड़ा को समझ लिया, यह क्या मेरे लिए कम आनन्द की बात है !

कु०—मेरे कष्ट में तुझे आनन्द होता है भाभी !

रू०—यह कष्ट नहीं है बबुई, यही जीवन का आनन्द है। परन्तु, मुझे कैसे मालुम होगा कि चिट्ठी इन्हें देनी है। सड़क पर तो न जाने कितने आदमी आया जाया करते हैं।

कु०—पहले यही क्या ठीक कि वह आज भी आवेगा ही। उसे मेरे दर्द का हाल क्या मालूम ? लेकिन अगर आज आवेगा तो मैं उसी समय महरी के हाथ यह पत्र तेरे पास भेज दूँगी।

बहुत अच्छा कहकर रूपा चली गई।

कुसुम ने आज भी चार बजे ही से छत पर मँडराना शुरू कर दिया। थोड़ी ही देर में वही मधुर मूर्त्ति उसे फिर दिखाई पड़ी। उसने तुरन्त ही नीचे उतरकर महरी के हाथ रूपा के पास चिट्ठी भेज दी। रूपा चिट्ठी पाते ही दौड़ी आई और उक्त नवयुवक को छत पर देख आने के बाद कमरे में चारपाई पर बैठी हुई कुसुम के कान में बोली—बबुई, यह तो तुम्हारा वही पागल प्रेमी है, जिसने स्वयं तुम्हारे पास पत्र

भेजा है। उसके लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है कि तुम स्वयं उसके पीछे पागल हो गई।

कुसुम ने मुसकराकर अपने हृदय के हर्ष को प्रकट करते हुए कहा—और क्या यह मेरे सौभाग्य की बात नहीं है, भाभी! दूसरा कोई होता, तो शायद मेरी ओर आकर्षित न होता।

यह भी कोई बात है बबुई! तुम्हारी मन्द चितवन की एक चोट से पत्थर भी कराहने लगें; मनुष्य की क्या बिसात है! तुम्हें शायद अभी अपनी शक्तियां मालूम नहीं हैं ननद! तुम्हारे बालों की एक लट बड़े-बड़े ज्ञानियों के मन को बाँधने के लि॒ काफ़ी है। तुम्हारी रसीली मुसकान, तुम्हारी बाँकी चितवन, तुम्हारी मस्तानी चाल देख कर ऐसा कौन पुरुष है जो अपने संयम को रख सके। तुम्हारे ऊपर मर्द की कौन कहे, स्त्रियाँ मोहित हो जाती हैं ननद!

यह कहकर रूपा ने जल्दी से कुसुम के कपोलों पर अपने होंठ रख दिये।

कुसुम ने चिढ़ने का बहाना करते हुए कहा—भाभी, अब तू मार खायगी।

रू०—यहाँ कोई देख थोड़े ही रहा है बबुई, तुम्हारी मार की मुझे कोई परवा नहीं है। तुम इसी तरह मार खिलाती चलो और मैं तुम्हें प्रेम का रस चखाती चलूँ।

कु०—प्रेम से तो मैं एक ही दिन में ऊब गई भाभी!

रू०—घबराओ मत, ऊबोगी नहीं, इसमें तभी तक ऊब मालूम ोती है जब तक अच्छी तरह डूबो न। मेरी बातें सच हैं या झूठ, यह तुम्हें आगे चलकर मालूम होगा। अच्छा, अब मैं तुम्हारे पागल प्रेमी को तुम्हारे पागलपन की चिट्ठी देने जाती ू। लेकिन तुम्हारी उसकी भेंट कैसे होगी बबुई ?

कु०—मैं यह क्या जानूँ ? मैं तो यही जानती हूँ कि उससे भेंट न होगी तो मैं पागल हो जाऊँगी।

रूपा ने हँसकर कहा—जैसे अभी तुम पागल नहीं हो। ख़ैर। इधर तुम्हारे बाबू जी कहीं जायँगे तो नहीं ?

कु०—बाबू जी जायँ या न जायँ, इससे क्या मतलब ? तुम कोई ऐसा उपाय करो कि वह यहीं रह जाय। मैं उसे हरदम ेखती रहना चाहती हूँ। बाबू जी देखने में कोई बाधा तो डाल नहीं सकते।

रूपा आँखों में शरारत भरे हुए हँसने लगी।

+ + +
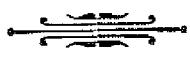
विष के घूँट

[८]

महारानी अपने को बताती तो थी जाति की कहारिन, लेकिन उसकी सूरत-शक्ल उसे किसी ऊँचे कुल की स्त्री घोषित करती थी। जो हो, जैसी रूपवती वह थी वैसी बड़े घर की भी बहुत ही कम बहुएँ होंगी। तीन चार वर्ष हुए, प्रयाग में वह गर्भवती की अवस्था में आई थी। त्रिवेणी जी के तट पर यात्रियों से भिक्षा के रूप में जो कुछ ल जाता, उसी के द्वारा वह अपना पेट पालती थी। कितने

ही मनचले महाशय उसे अधिक पैसा देना चाहते थे और उसकी दुख-कथा सुनने के लिए उसके पास घण्टों बैठते थे, वह उनका मतलब समझ जाती थी और न उनका पैसा लेती, न उन्हें अपनी दुख-गाथा सुनाती। वह चार बजे त्रिवेणी में स्नान करती और बेनामाधव जी, महावीर जी, तथा महादेव जी से अपनी गोद के लाल राजाराम के चिर जीवन का आशीर्वाद माँगती। पहिले सभी पंडे उससे अच्छा व्यवहार करते थे, उसको कुछ आमदनी करा देते थे, लेकिन कुछ दिनों के बाद वह सब को अप्रिय हो गई। उन लोगों ने पहले तो यात्रियों को उसके विरुद्ध भड़का कर उसकी आमदनी मारी, और फिर जब इस पर भी महारानी भगवान का नाम लेती और किसी प्रकार की चिन्ता न दिखाती तब वे अनेक प्रकार के कष्ट देने लगे। कभी वे राजाराम को इस कारण पीट देते कि वह धूल लगाये हुए उनके तख्ते पर चढ़ जाता था, और कभी उसी को इसलिये मार देते कि यात्रियों से भिक्षा माँगने के लिए वह बेमौके खड़ी होती थी। एक दिन वहाँ एक महात्मा आये, उन्होंने महारानी की दशा देखी। राजाराम वहीं खेल रहा था, उसे महात्मा जी ने प्रेम समेत गोद में ले लिया। जिस बच्चे को अब तक नीच से नीच आदमी की भी मार खानी पड़ी थी, उसे साधु की गोद में देख कर महारानी का जी उल्लास से भर गया। वह गद्गद होकर बोली—महाराज ! कभी

ेरे दुःख कटेंगे भी ? महात्मा बोले—यही बालक तेरे कष्टों ा मूल है, जब तक यह तेरे साथ रहेगा, तू दुख ही दुख ाती रहेगी, यदि तू चाहती है कि तेरे क्लेशों का अन्त हो, तो इस लड़के को अपने से अलग कर दे। यह कह कर महात्मा ने महारानी की आँखों की ओर बड़े ध्यान से देखा, फिर प्यार से बोले—बेटी, तू दुखी मत हो, तुझे शीघ्र ही ान्ति मिलेगी। थोड़ी देर थम कर उन्होंने फिर कहा—बेटी, या इस बच्चे को मुझे दे सकती हो ? महारानी रोकर बोली के महाराज आपकी बात मैं कैसे काटूँ, लेकिन आप ही सोचें, सके बिना मैं कैसे जीऊँगी। महारानी फिर महात्मा का ैर पकड़ कर रोने और कहने लगी—महाराज किसी तरह ुझ अबला का दुख काटिए। महात्मा ने महारानी के सिर र हाथ फेरते हुए कहा—ईश्वरेच्छा के सामने सिर ुका बेटी। महात्मा के प्यार ने महारानी को ऐसी शान्ति ी जैसी गंगा जी का जल गरमी के सताये लोगों को दिया रता है। महात्मा ने यह समझ कर कि महारानी का बच्चे से बिलग होना कठिन है, अपने झोले में से एक यन्त्र निकालते ुए कहा—बेटी, तेरे पतिदेव तुझे शीघ्र मिलेंगे और अन्त में ग्रहण करेंगे, इस बालक पर बड़ी बड़ी विपत्तियाँ आवेंगी, इस न्त्र को इसे पहिना दो, मैं एक मंत्र बतला देता हूँ, कठिनाई े समय इस मंत्र का पाठ करना। भगवान सहायक होंगे।

[६]

महारानी जहाँ कहीं भी जाती थी, राजाराम को अपने साथ ले जाती थी। उसे छोड़ कर उसके पास न कुछ माल था न असबाब, इस कारण जब वह पंडों के उत्पीड़न से घबड़ाकर अन्यत्र रहने के लिए जाने लगी तो देखने वालों ने यह न समझा कि यह वहाँ से चली जा रही है, उन्होंने यही सोचा कि वह किसी काम से कहीं जाती है। महारानी बाँध के पास जाकर एक पेड़ के नीचे बैठ गई। गर्मी के दिन थे, म

जाड़े का डर था न पानी का, रात अँधेरी थी ही, उसने वह रात उसी पेड़ के नीचे काटने का निश्चय किया।

महारानी को उसी पेड़ के नीचे रहते धीरे धीरे कई दिन बीत गये। यहाँ कष्ट अधिक अवश्य था, परन्तु झंझट भी कम था। यहाँ आने पर कई वृद्धा स्त्रियों ने करुणा-वश उसे कई आने पैसे दे दिये। इन पैसों में से बहुत थोड़ा खर्च करके उसने शेष को इसलिए जोड़ रक्खा कि यथेष्ट हो जाने पर अपने लिए एक झोपड़ी खड़ी कर लूँ। पन्द्रह-बीस दिनों के बाद उसका यह स्वप्न कार्य्य रूप में परिणत हो गया। दोपहर की कड़ी धूप से बच्चे की रक्षा होने का उपाय हो गया।

महारानी का जीवन यहाँ प्राय शान्तिपूर्वक व्यतीत होने लगा। किन्तु, जान पड़ता है, अदृष्ट ने उसके साथ शत्रुता करने का पक्का निश्चय कर लिया था। क्योंकि, किसी ने आकर पास-पड़ोस के लोगों से कह दिया कि महारानी ब्राह्मण विधवा है और राजाराम का जन्म पाप से है। राजाराम के सम्बन्ध में ऐसी विचित्र बातें सुनकर सुनने-वाले सन्न रह गये। एक बुढ़िया ने कहा—भैया तभी तो जब से वह आया है, तब से हम सब की बरकत नहीं है। एक नौजवान ने कहा—देखा, न, क्षेत्र भर के लड़कों की मोटाई लेकर कोल्हू सा हो गया है साला। एक अधेड़ औरत ने कहा—भैया मुझे तो डर लगता है, यह राक्षस है क्या?

सच पूछिए तो सभी के दिल में दहशत पैदा हो गई और सभी अपनी अपनी विपत्ति कहकर उसका दोष राजाराम के वहाँ आने पर मढ़ने लगे। किसी के घर में आग लगी तो वह राजाराम के कारण, किसी का बूढ़ा बैल मर गया तो वह राजाराम की वजह से। भिखारियों ने कहा कि इस गाँव की क्या, जब से लड़का यहाँ आया तब से क्षेत्र भर की आमदनी मारी गयी, यात्री कम आते हैं, बेचारे मल्लाहों को भी कुछ नहीं बचता और पण्डे तो इसको सौ सौ गालियाँ देते हैं। इस प्रकार लोगों के मानसिक नेत्रों के सामने राजाराम की एक भयङ्कर मूर्ति खिँच गयी। उस मूर्त्ति से वे बेतरह डर गए, राजाराम की काली शकल ने उनके डर को और भी बढ़ा दिया। उन्होंने अपने लड़कों को ख़ूब डांट दिया कि वे राजाराम के साथ कभी न खेलें, और सबको यह अच्छी तरह समझा दिया गया कि राजारामको कहीं आश्रय न मिलने पावे। आश्रय देने का अर्थ सब को बता दिया गया और उसके अन्तर्गत खाना देना, पानी देना, घर में बैठने देना आदि सभी कुछ समझाया गया। नेतागण चिन्तापूर्वक यह कार्य्य कर रहे थे कि इतने में इन मुखियों के लड़कों तथा अन्य दो-एक लड़कों के साथ खेलता हुआ राजाराम दिखाई पड़ा। ये तीनों के तीनों आग बबूले हो गये और दौड़ते हुए जाकर उन्होंने राजाराम को इतने ज़ोरों के साथ डाँटा कि

बेचारे ने भागकर अपने घर में ही साँस ली। गंगा दशहरा का दिन था, महारानी ने राजाराम के लिए आज कुछ विशेष भोजन बनाने का विचार किया था, इसीलिए घर के आस-पास खेलने की कुछ फ़ुरसत सी राजाराम को मिल गयी थी। राजाराम जाते ही माँ के गले से लिपट गया और सिसक-सिसककर रोने लगा। माँ ने पूछा—किसने मारा, बेटा? राजाराम कुछ न बोला, वह रोता ही रहा। महारानी ने एक बार बच्चे की ओर स्नेहभरी कातर दृष्टि से देखा और फिर उसकी आँखों से आँसू की बड़ी बड़ी बूँदें टपक पड़ीं। उन्हें अपने अंचल से पोंछकर, उसने बच्चे के आँसू पोंछे और कहा—बेटा, चुप रहो, तुम्हारे लिए आज पूड़ी बनाऊँगी, यहीं बैठकर अपने खिलौने के साथ खेलो। पूड़ी का लालच देने से महारानी ने देखा कि राजाराम सचमुच कुछ चुप हो गया। उसने उसे गोद से उतार कर उसके सामने उसके खिलौने रख दिये और स्वयं रसोई के काम में लग रही।

राजाराम खिलौनों में ऐसा भूला कि उसे यह न याद रह गया कि किसी ने उसे मारने को दौड़ाया था, या उसे आज कोई बढ़िया चीज़ खाने को मिलेगी। उसने अपने मिट्टी के राजा रानी के लिए एक महल बनाना शुरू कर दिया था। धीरे धीरे झोपड़ी में महल खड़ा हो गया था, राजा रानी गद्दी पर बैठा दिये गये थे, सब ठीक-ठाक हो जाने पर अचा-

तक उसको सूझा कि चाँदी की थाल में राजा-रानी को भोजन कराना चाहिए, भोजन का ध्यान आते ही उसने दृष्टि फेरी तो देखा कि मां पूड़ी बना रही है। इस समय राजाराम के आनन्द का कहना ही क्या था, राजा-रानी के खाने के लिए पूड़ी ही तो चाहिए। उसने कहा—मां, एक पूड़ी मुझे दे दे, मैं अपने राजा-रानी को खिलाऊँगा। पूड़ी तैयार हो गई थी, महारानी ने आलू की तरकारी भी बनाई थी, बोली—बेटा आओ हम तुम सब मिलकर खायँ, अपने राजा-रानी को भी ले आओ। राजाराम ने कहा—अम्मा, मेरे राजा रानी तो महल के भीतर खायँगे, वहाँ नहीं लाऊँगा, तू मुझे यहीं दे दे। बच्चे का हठ मानना ही पड़ा, एक पूड़ी राजाराम को दी गई और जब राजा-रानी को वह खिला चुका, तो माँ की गोद में जाकर कूद पड़ा। फिर मां-बेटे ने प्रेम-पूर्वक शेष पूड़ियाँ खायीं, बीच बीच में राजाराम कभी कहता—मां, तू तो सब पूड़ियाँ खाये जाती है, मैं क्या खाऊँगा। और फिर जब मां कहती—अच्छा तू ही खा, तब कहता कि नहीं, नहीं, मां तू भी खा; मैं अकेले नहीं खाऊँगा। सूर्य देव पश्चिम में डूबते हुए दीन झोपड़ी में स्नेह की यह लीला देख रहे थे।

[१०]

रामकिशोर त्रिवेदी नारायण से अलग होकर आवारगी में अपना समय बिताने लगा था। साल भर से वह प्रयाग से हटने का नाम नहीं लेता था, अपने एक रिश्तेदार के यहाँ पड़ा रहता था। बाप के बूढ़े होने पर भी अभी घर के किसी तरह के काम से उसे मतलब नहीं था। त्रिवेणी तट पर स्नान के लिए वह प्रायः नित्य ही अकेले आया करता था, पाप काटने के लिए नहीं, बल्कि रूप की खोज में।

जब से उसकी आँखें महारानी के ऊपर गड़ गई थीं, तब से उसे किसी तरह चैन नहीं था। रुपये पैसे, भोग-विलास आदि सभी का प्रलोभन उसने दिया, पर महारानी का मन ज़रा भी न डिगा। अन्त में उसने सोचा कि रात को जब महारानी सोई रहे तब उसकी झोपड़ी में प्रवेश करके जो इच्छा किसी तरह पूरी न हो सकी उसे चोरी से पूरी करे। अँधेरी रात को ९।१० बजे वह कई बार दृढ़ निश्चय करके आया, लेकिन झोपड़ी के भीतर जाने की हिम्मत न पड़ी। आज वह अपने घर से यह दृढ़ निश्चय करके चला कि चाहे जेल में जाना पड़े, बदनामी उठाना पड़े, अथवा प्राण तक जायँ, परन्तु अपनी लालसा अवश्य पूरी की जायगी।

बारह बजे रात का समय था, चारों ओर अन्धकार छाया हुआ था। रामकिशोर झोपड़ी के पास खड़ा खड़ा नाना प्रकार के तर्क-वितर्क कर रहा था। मदन-पीड़ा से व्याकुल मन कहता था—क्या चिन्ता है, आगे बढ़ो, रात्रि में कौन देखता है, अवसर से लाभ उठाओ और अपनी कामना पूरी करो। परंतु क्या जाने कहाँ से यह आवाज़ आती थी—रुको, यह काम बड़े जोखिम का है। मन कहता था—पक्की दुराचारिणी है, कुछ न बोलेगी, किन्तु विवेक कहता था कि नहीं वह तुम से घृणा करती है, तुम्हारा सर्व्वनाश कर देगी। अन्त में मन के तूफ़ान के सामने क्षीण विवेक की कुछ न चली, और समस्त संकोच

भाव का तिरस्कार कर वह दबे पावों झोपड़ी के दरवाज़े के पास आया। कहीं वह जाग न जाय, यह सोच कर धीरे से ही अरहर के डंठलों को बाँध कर बनाये गये हुए दरवाज़े को उसने हटाया और साहस के साथ किन्तु बहुत चुपके भीतर प्रवेश किया। उसकी तबियत उछल रही थी, लेकिन दरवाज़े को भीतर से मज़बूती के साथ बाँध कर जब उसने एक दियासलाई जलाई तो वहाँ महारानी दिखाई ही नहीं पड़ी। रामकिशोर का कलेजा बैठ गया। एक दियासलाई और जलाकर देखा, उसके बर्तन भी वहाँ न थे, रामकिशोर के मन ने काँप कर पूछा—महारानी कहाँ गई ?। शीघ्र ही उत्तर भी उसने दिया—दुराचारिणी है, किसी बदमाश के यहाँ। रामकिशोर निराश होकर लौट आया, उसने निश्चय किया कि कल शाम ही को यहाँ आ जाऊँगा, क्योंकि निराशा होते हुए भी उसे कुछ आशा हो गई।

रामकिशोर सवेरे त्रिवेणी में स्नान के बहाने फिर आया। वह झोपड़ी की ओर उछलते हुए हृदय के साथ इस आशा से गया कि अब सवेरे तो आ गई होगी, पर देखा तो वहाँ कोई नहीं। उदास होकर नहाने चला गया, इस समय उसकी वही दशा थी जो मिहनत के बाद रातिब न मिलने पर घोड़े की होती है। उसने सोचा कि मैं बहुत सवेरे आ गया, कहीं नहाने आदि के काम से त्रिवेणी की ओर ही न गई हो। इस विचार ने उसके

हृदय में फिर उत्कण्ठा उत्पन्न की और नवीन आशा-शक्ति का संचार होने के कारण बड़ी तेज़ी के साथ वह त्रिवेणी की ओर चला, परन्तु ! आँखें फाड़ फाड़ कर देखने पर भी वहाँ महारानी की मधुर मूर्ति न दिखाई पड़ी। नहाने का काम बेगार सा टाल कर फिर लम्बे पैरों वह झोपड़ी के पास आया, पर वहाँ फिर वही निराशा। रामकिशोर के हृदय ने पूछा—हाय, वह कहीं चली तो नहीं गई?

रामकिशोर नित्य झोपड़ी के पास से होकर आया करता था, लेकिन सप्ताह के सप्ताह बीत गये और एक दिन भी ऐसा न आया जब महारानी दिखलाई पड़े। थोड़ा थोड़ा करके गाँव के लड़कों ने झोपड़ी गिरा भी दी, इस दृश्य को रामकिशोर चुपचाप देखा करता था, जिस दिन वह टूट टूट कर ज़मीन पर गिर पड़ी उस दिन उसकी आशा का महल भी धराशायी हो गया। उसे निश्चय हो गया कि महारानी कहीं चली गई।
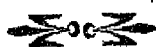
[११]

रामकिशोर महारानी के खो जाने पर किसी दूसरी सुन्दरी की खोज में लगा। एक दिन स्नान का कोई विशेष दिन था। स्त्रियें और पुरुषों की भीड़ त्रिवेणी की ओर जा रही थी। इसी भीड़ में अपने लाभ के लोभ से रामकिशोर भी धीरे धीरे पैदल चला जा रहा था। एकाएक सामने से आने वाला एक ताँगा रुक गया और उस पर बैठे हुए एक आदमी ने उछल कर हर्ष से उसे छाती से लगा लिया। यह आदमी और कोई नहीं, उसका लड़कपन का साथी त्रिवेदीनारायण था।

त्रिवेदीनारायण ने कहा—यह बताओ कि तुम्हारी हमारी जम कर बातें किस तरह हों? तुम नहाने जा रहे हो और मैं लौट रहा हूँ।

रामकिशोर ने तुरन्त ही उत्तर दिया—यह तो कुछ कठिन नहीं है, ताँगे वाले को धता बता दो, फिर हम तुम गपशप करते हुए मेले में घूमेंगे।

त्रिवेदीनारायण ने यह बात स्वीकार कर ली। ताँगे वाले को भाड़ा देकर उसने विदा किया और तुरन्त ही पूछा—हाँ भाई! यह तो बताओ कि गाड़ी पर साथ छूटने के बाद तुमने क्या क्या किया, कहाँ गये?

राम०—पहले मैं अपना हाल बताऊँ या तुम अपना बताओगे? मैं तुम्हारा हाल जानने के लिए बहुत उत्सुक हूँ, क्योंकि अगली गाड़ी से हवड़े पहुँचने पर तुम्हारी खोज करने के लिए मैंने कोई बात उठा नहीं रक्खी थी। परदेश में मित्र का साथ छूट जाने से जो कष्ट होता है सो तो हुआ ही था, साथ ही, जो कुछ रुपये मैंने जेब में रखे थे उन्हें किसी पाकेटमार ने निकाल लिया था तथा मुझे इस प्रकार सर्वथा असहाय बना कर तुम्हारे वियोग को और भी तीखा बना डाला था।

त्रि०—अच्छी बात है, मैं ही अपना दास्तान शुरू करता हूँ। जब तुम मेरे डब्बे में न आये और गाड़ी चल दी तो मैंने समझा कि तुम किसी न किसी डब्बे में बैठ गए होगे। इसी भय से मैंने गाड़ी की जंजीर भी नहीं खींची। लेकिन बाद को जब तुम्हें सामने खड़े देखा तब अपनी इस भूल के लिए पछताना पड़ा, क्योंकि जब मैं हवड़ा स्टेशन पर उतरा तब तुम्हें लाख ढूँढ़ने पर भी न पा सका। बड़ी देर तक इधर-उधर फिरता रहा, किन्तु जब किसी उपाय से तुम नहीं मिले तब राम का नाम लेकर जी को ढाढ़स

बँधाया और एक गाड़ी वाले से होटलों का पता-ठिकाना पूछ कर उनमें से जो एक मध्य श्रेणी का था उसी में ले चलने का उसे आदेश दे दिया। रुपया पास था ही, किसी तरह की तकलीफ़ नहीं हुई। अब जो घटना वहाँ घटी उसकी चर्चा करता हूँ।

मेरे होटल के पास एक फ़र्लाङ्ग की दूरी पर एक तमोलिन की दूकान थी। संध्या समय मैं उधर घूमने निकला तो उसकी शोख़ी और चुलबुली जी में घर कर गई। एकाएक तबियत हुई कि इसके हाथ से पान के बीड़े खाने चाहिए। दिल में ख़याल पैदा होने के साथसाथ ही पैरों ने उसकी ओर चलना शुरू कर दिया। तमोलिन निहायत हसीन थी और उतनी ही उदार और मिलनसार भी जान पड़ी। उसकी सहृदयता पर लट्टू होकर मैं ने दाम के लिए एक रुपया देकर शेष पैसे उसे जमा कर रखने के लिए कह दिया। उसने मेरी इस भलमनसाहत के बदले में ज़रा सा मुसकरा दिया।

[१२]

त्रिवेदी नारायण ने जेब में से इलायची निकाल कर एक रामकिशोर को दिया और एक अपने मुँह में डालकर फिर कहना शुरू किया:—

उस दिन तो मैं चला आया। लेकिन दूसरे दिन जब तमोलिन वाले मकान ही के तिमंज़िले पर मैंने एक किशोरवयस्का बालिका को लापरवाही के साथ खिलवाड़ करते देखा तो होटल की ओर पर फेरना मेरे लिए कठिन हो गया। परन्तु, यह तो कठिन रोग था। जहाँ न कोई जान न पहिचान वहाँ अट्टालिका पर विहार करने वाली नवयुवती से मिलने की आशा दुराशामात्र थी। लेकिन मेरी मानसिक विकलता तमोलिन से छिपी नहीं रह सकी। एक दिन जब मैं उसकी दूकान पर जाकर बैठा तब वह पूछ बैठी—बाबू जी! आप उदास काहे दीखते हो?

मैं चुप रहा।

लेकिन उसने अपना प्रश्न फिर दुहराया। तब मैंने कहा—क्या बताऊँ, क्या तुम मेरे दुख को दूर कर दोगी जो बार बार पूछती हो ?

उसने उत्तर दिया—अगर मेरे किये दूर होने लायक होगा तो जरूर ही दूर कर दूँगी, नहीं तो कुछ कोशिश तो करूँगी। आप परदेसी हैं, आपकी सहायता करना तो मेरा धर्म है।

जी में आया तो कि साफ़ साफ़ कह दूँ, लेकिन फिर संकोच के मारे कुछ कह न सका। शाम हो गई थी। होटल में आकर अपने शरमीले स्वभाव को कोसता हुआ बिना कुछ खाये पिये चारपाई पर पड़ रहा। आँखों में नींद न थी। बहुत देर तक उसका आवाहन करता रहा। अन्त में हार कर सोचा कि अच्छा चलो अपनी इस प्रेम-पात्री के नाम एक कल्पित पत्र ही लिखूँ। चारपाई पर से उठकर बिजली का बटन दबाया। कमरे में रोशनी हो गई। फिर यह देखने लगा कि उपन्यासों में किसी नायक ने अपनी नायिका को किस तरह के प्रेम-पत्र लिखे हैं। उन्हीं के ढंग पर मैं भी लिखूँ। मेरी वह सारी रात जागते ही बीती। कितने ही पत्र लिखे और फाड़ डाले। अन्त में एक कविता पसन्द आई। उसमें सिर खरोंच खरोंच कर दो एक लाइनों में कुछ हेर फेर किया और फिर उसे लिफ़ाफ़े में बन्द करके जेब में डाला। इतने परिश्रम के बाद वह काम सिद्ध हुआ था, इसलिए कुछ संतोष हुआ।

त्रिवेदीनारायण इतना कह पाया था कि रामकिशोर ने एकाएक कहा—भाई यह कहानी इतनी दिलचस्प है कि इसे कहीं बैठ कर ही कहना और सुनना अच्छा होगा। इसलिए चलो इस नीम के पेड़ के नीचे हम लोग आनन्द से बात चीत करें—रामकिशोर ने हाथ से इशारा करते हुए कहा।

त्रिवेदीनारायण ने भी रामकिशोर का प्रस्ताव पसन्द किया और निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर इतमीनानके साथ बैठ जाने के बाद फिर इस प्रकार कहना शुरू किया:—

तमोलिन ने मेरी उसी चिट्ठी की सहायता से मेरा काम बना दिया। मेरी प्रेमिका मुझे मिल गई। परन्तु वहीं के मेरे एक मक्कार नव-परिचित ने मेरे साथ ऐसा छल किया कि मेरी प्रेयसी से पहली भेंट अन्तिम भेंट भी हो गई।

[१३]

रामकिशोर ने त्रिवेदीनारायण की बात चीत में विराम
ेखकर तुरन्त ही पूछा—आख़िर यह मक्कार आदमी कहाँ से
ीच में कूद पड़ा? क्या यह भी तुम्हारी प्रेमिका का प्रेमी
था?

त्रिवेदीनारायण ने उत्तर दिया—नहीं, वह उसी तमोलिन का
प्रेमी था और उसे यह सन्देह होने लगा कि तमोलिन
मुझे प्यार करती है। इसलिए उसने अपने प्रेम और विश्वास-
पात्रता से मुझे वश में कर के इधर-उधर घूमने ले जाना शुरू
किया। एक दिन मैंने उससे कहा—भाई साहब मैं जहाज़ पर
कभी नहीं चढ़ा हूँ, एक रोज़ चलो इस पर कुछ दूर सैर कर
आऊँ। उसने स्वीकार कर लिया। अन्त में एक दिन हम दोनों
जहाज़ पर बैठ कर रंगून के रास्ते पर चल पड़े। थोड़ी दूर
गये होंगे कि एकाएक वह आदमी ग़ायब हो गया। मैंने समझा
कि जहाज़ ही में कहीं होगा, जायगा कहाँ। जो थोड़ी बहुत

कोशिश मैं कर सकता था वह करके अन्त में निराश हो चुपचाप बैठ रहा। लेकिन मेरे दुखों का अन्त यहीं नहीं होने वाला था। मुझे मालूम हुआ कि मेरे पास हज़ार रुपयों के नोटों का जो पुलिन्दा था वह भी ग़ायब हो गया। हाय! अब मैं क्या करता? कौन मेरे रुपयों को मुझे वापिस दिला सकता था?

तुरन्त ही विश्वास हो गया कि वही दुष्ट रुपये भी उठा ले गया। उस अवस्था में मुझे आँखों से आसू बहाने के सिवा और कोई चारा न था। रोता था और अपनी ग़लती के लिए अपने आप को कोसता था। कभी माता पिता की याद आती थी और कभी तुम्हारी। पलों के न रह जाने पर जी में इतनी घबराहट और बेचैनी होने लगी कि बंगाली खाड़ी की लहरों का दृश्य एक दम से फीका पड़ गया। परन्तु, अब हो भी क्या सकता था? रोने और अफ़सोस करने से तो अवस्था सुधर सकती नहीं थी। किसी तरह जी को कड़ा किया और धीरता के साथ विपत्तियों का सामना करने का संकल्प करके हृदय को विश्राम दिया।

रंगून में जहाज़ से उतरने पर मेरे पास एक टका नहीं था। एक बार तो मन में आया कि पिता जी के पास पत्र लिख-कर रुपया मँगा लूँ और घर लौट जाऊँ; लेकिन फिर सोचा कि यह शरम की बात है, हज़ार रुपये लाकर भी घर को अपनी दीनता का सूचक पत्र लिखना अच्छा नहीं है। अब मुझे एक

एक पैसे की वास्तविक क़ीमत का अनुभव होने लगा और मैंने सोचा कि पिता जी की गाढ़ी कमाई के हज़ार रुपये इस तरह पानी में डुबो कर मैंने अच्छा नहीं किया।

घर से निकले धीरे धीरे पन्द्रह-सोलह दिन हो चुके थे, लेकिन कुछ तो आलस्य के कारण और कुछ इस उद्देश्य से कि पिता जी को थोड़ा सा मेरी शक्तियों का भी पता चल जाय, मैं क्या कर सकता हूँ, इसका भी थोड़ा परिचय मिल जाय, मैंने अभी तक उन्हें पत्र नहीं लिखा था। बारम्बार यह ख़याल ज़रूर आता था कि माँ रोती होंगी, उन्हें मेरा वियोग असह्य हो रहा होगा। परन्तु यह सोच कर कि मां के कष्ट के बिना पिता जी की आँखों में मेरा असली मूल्य आँकेगा भी नहीं, उस कष्ट को मैं उतना अनुचित नहीं समझता था जितना वह वास्तव में था। ख़ैर, एक रोज़ जब पत्र का न लिखना बेहद बुरा मालूम होने लगा तब एक कार्ड लिख कर डाकख़ाने में छोड़ने के लिए जेब में रख लिया। इस कार्ड ने जो कुछ करतूत की उसका रोना मुझे आज तक है। इसने मेरे जीवन को अत्यन्त विषाद-पूर्ण बना दिया, रामकिशोर!

इतना कह कर त्रिवेदीनारायण ने एक ठण्डी साँस भरी और वेदना-व्याकुल नेत्रों से रामकिशोर की ओर देखा।

रामकिशोर ने कहा—भाई, इस कार्ड की कथा बहुत विचित्र होगी, क्योंकि जब मैं तुमसे अलग होकर बनारस

पहुँचा और तुम्हारे घर गया तो मुझे महीने दो महीने के बाद भी यही मालूम हुआ कि तुम्हारे पास से कोई चिट्ठी नहीं आई है।

हां भाई, यही तो बात है। उस अभागे पत्र ने मेरे एक कुर्ते की जेब में पड़े रह कर मेरी माता की जान ली और पिता को संसार से विरक्त बनाया और मेरे बने बनाये घर को तबाह कर दिया।

लेकिन भाई साहब! तुम्हारी मां का देहान्त तो छः महीने बाद हुआ। तब तक भी अगर तुम्हारे हाथ की एक लकीर मिल गई होती तो वे धीरज न खोतीं। अन्त में उन्हें यह विश्वास होगया कि तुम जीवित नहीं हो। मैं जब जब उनके पास जाता तब तब वे बिलख बिलख कर रोतीं और पूछतीं कि मेरे भैया को कहां छोड़ आये रामू? मैं हमेशा उनसे सच-सच बातें बताता, लेकिन वे मेरे ऊपर विश्वास न करतीं और कहतीं कि नहीं, बेटा, मुझे बहलाओ मत, मेरे भैया का कलेजा इतना निष्ठुर नहीं है कि इतने दिन तक वह मुझे अपने कुशल-क्षेम की ख़बर न दे। अवश्य ही अब वह अच्छी तरह नहीं है, उसकी जान का कुछ न कुछ ख़तरा ज़रूर हो गया है। भाई, अब सच बातें बता दूँ। कभी कभी तो वे मेरे ही ऊपर सन्देह करने लगतीं थीं और शायद सोचती थीं कि जो हज़ार रुपया लेकर तुम घर से निकले थे उसी के लोभ से मैंने तुम्हारे प्राणों को संकट में डाल

दिया। इस प्रकार के सन्देहों से मैं बहुत दुखी होता था। उनका शमन करने का कोई उपाय न देख तथा माता के हृदय की प्रकृति का अनुमान करके मैं चुप रह जाता था और बाद को मैंने तुम्हारे घर जाना भी छोड़ दिया। ख़ैर यह तो बताओ कि तुमने दूसरा कोई पत्र क्यों नहीं लिखा ?

[१४]

त्रिवेदी नारायण ने आँखों में आँसू भर कर कहा—दूसरा कोई पत्र मैंने क्यों नहीं लिखा—इसकी तह में भी एक गहरी भूल है। जब मुझे अपने पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा करते करते लगभग एक महीना हो गया और इसके कारण मुझे काफ़ी बेचैनी का सामना करना पड़ा तब मैं बिलकुल झुँझला गया। मुझे पिता जी पर तो क्रोध आया ही, साथ ही माता जी पर कम रोष नहीं हुआ। अपने जिस महत्व का भाव मैं इन लोगों के हृदय-पटल पर अंकित करना चाहता था पत्रोत्तर न देना उसकी प्रबल उपेक्षा थी और इस उपेक्षा से मैं ऐसा तिलमिला उठा कि मैंने दूसरा पत्र तब तक न लिखने का निश्चय कर लिया जब तक पिता जी के पास लौटालने के लिए मैं हज़ार रुपये कमा न लूँ। यह एक ऐसा निश्चय था जिसने मुझे कई वर्षों तक काम में लगा रक्खा। बीच-बीच में मैं पिता-माता की उपेक्षा पर कुढ़ता था और प्रायः यह सोचता था कि शायद क्रोधी पिता जी ने माता जी को डाट-डपट कर मेरे प्रति उदासीन

बना लिया है। बहुत परिश्रम कर के इधर-उधर कुछ काम करता और जो कुछ मज़दूरी मिलती उसी में से थोड़ा थोड़ा रखता जाता था। किसी प्रकार एक हज़ार रुपये पूरे हो गये और रुपयों के साथ साथ फटकार से भरी हुई एक चिट्ठी पिता जी के पास भेजने का आनन्द लूटने का समय आ गया। किन्तु शीघ्र ही ऐसा करके मैंने देखा कि मेरा यह वार भी ख़ाली गया। कहां तो मैं सोच रहा था कि पिता जी का लज्जापूर्ण पत्र आता होगा और कहाँ वापिस आये वही रुपये तथा वह पत्र। अब मैं बहुत हैरान हुआ। रुपयों के लौटने की बात तो समझ में आ सकती थी, क्योंकि पिता जी उसे लौटा सकते थे, लेकिन इतने दिनों के बाद भी आकर पत्र न स्वीकार किया जाय, यह असम्भव जान पड़ा। अनिष्ट की आशंका से मेरे हृदय की व्याकुलता बढ़ चली। जिन पिता जी से मैं खार खाये बैठा था उन्हीं के दर्शनों के लिए जी तड़पने लगा। तत्काल ही मैंने निश्चय किया कि अब घर वापिस चलूँ—यहां तक कहने के बाद न जाने किन स्मृतियों से त्रिवेदी नारायण की आँखें डबडबा आईं और उसका गला रुँध गया। थोड़ी देर के लिए वह बोलने में असमर्थ हो गया। लेकिन रामकिशोर को इससे क्या मतलब ? उसने कहा—हां, तो आगे बताओ, उस तमोलिन या लड़की से तुम्हारी फिर भेंट हुई या नहीं ?

---

[१५]

त्रिवेदीनारायण ने थोड़ी देर बाद फिर अपना कथन शुरू किया—रंगून से कलकत्ते पहुँचा तो मैंने सोचा कि तमोलिन से तथा उस नीच मनुष्य से, जिसने मुझे जहाज़ पर धोखा दिया था, ज़रा भेट कर लूँ। एक गाड़ी किराये की करके शीघ्र ही मैं तमोलिन के मकान के सामने पहुँच गया। तमोलिन तब भी पान के बीड़े लगा रही थी, उसने देखते ही मुसकरा दिया। सामान उतरवा कर मैंने उसी की कोठरी में रखवा दिया और किराया देकर गाड़ीवाले को विदा किया।

तमोलिन ने मेरा बड़ा आदर-सत्कार किया। जलपान का प्रबन्ध करा के बढ़िया पान के बीड़े लगाये और फिर बात करने लगी। सबसे पहिले उसने मेरे धोखेबाज़ साथी की मौत का सन्देश सुनाया। उसको भी कुछ कड़ी बातें कहने के लिए मैंने मज़मून बाँध लिया था। इसलिए पहले तो कुछ बुरा मालूम हुआ। लेकिन फिर यह सोचकर कि मर गया सो भी अच्छा ही हुआ, सन्तोष कर लिया। मैंने पूछा आख़िर वह कैसे मरा ?

तमोलिन हँस कर बोली—बाबू जी! मरने में भी कहीं देर लगती है, तीन चार दिन ज्वर आया, मर गया। हां, आपके एक हज़ार रुपये जो ठग लिये थे वे मेरे पास हैं। उन्हें आप ले लीजिएगा। वह बड़ा पाजी आदमी था। आप उसकी मीठी बातों में आ गये थे। मैं आपको उससे सावधान करना चाहती थी, परन्तु मुझे ऐसा करने का कोई मौक़ा मिलने के पहले ही आप उसके जाल में फँस गये। कुशल यह हुई कि उसने आप की जान का कोई ख़तरा नहीं किया। बड़ा ही पाजी और बदमाश आदमी था, उसके मारे तो मेरी नाक में दम था।

मैंने कहा—एक बात तो बताओ तमोलिन, वह एका-एक जहाज़ पर से कैसे ग़ायब हो गया?

तमोलिन ने उत्तर दिया—ग़ायब वह हो सकता था। उसके लिए जहाज़ पर से कूद पड़ना कोई कठिन बात नहीं थी। लेकिन शीघ्र ही उसे कोई जहाज़ वापिस आता दिखाई नहीं पड़ा। इसलिए वह बहुत दूर तक उस जहाज़ पर जाकर दूसरे पर चढ़ा। वह बड़ा ही अजीब आदमी था।

मैंने पूछा—और ये रुपये तुम्हें कहां मिल गये।

तमोलिन ने उत्तर दिया—बाबू जी, रुपये-पैसे लाकर वह मुझे ही तो देता था। वह आप तकलीफ़ें झेलकर जो कुछ लाता था मुझको ही तो देता था। वह यही चाहता था कि मैं

किसी दूसरे से न बोलूँ। मुझे दूकान बन्द कर देने के लिए बहुत कहा करता था। लेकिन मैंने दृढ़ रह कर कह दिया कि दूकान तो मैं नहीं बन्द कर सकती। आप से मुझे स्नेह के साथ बातचीत करते देख कर वह कुढ़ गया था और इसी-लिए उसने आप के साथ ऐसा किया।

इस उत्सुकता के शान्त होने पर मैंने पूछा—अच्छा वह लड़की तो अपने ससुराल गई होगी।

तमोलिन ने जवाब दिया—उसका हाल कुछ न पूछिए। उस बेचारी के ऊपर तो दुख का पहाड़ ही टूट पड़ा। पाप का का जो फल प्रायः स्त्रियों को मिल जाया करता है वह उसे भी मिल गया। शायद उसकी ऐसी हालत से ही घबराकर पंडित जी ने यह मकान बदल दिया, फिर क्या हुआ मुझे बिलकुल नहीं मालूम।

भाई रामकिशोर! इस समाचार ने मुझे अधमरा सा कर दिया। किन्तु तमोलिन को कोई बहुत अफ़सोस नहीं था, उसके लिए तो यह जैसे एक साधारण सी बात हो गई हो।

मैंने तमोलिन से कहा—क्या किसी तरह उससे मेरी भेंट हो सकती है?

तमोलिन बोली—बाबू जी, बिलकुल असम्भव बात है। मैंने तो सुना कि पंडित जी भी मर गये। अगर यह सच है

तो उनके घरवाले यहां होंगे ही क्यों ? फिर लड़की तो न जाने किस घाट का पानी पी रही होगी।

इसके बाद मैं चुप रहा। इस समाचार ने मेरा वहां अधिक देर तक ठहरना कठिन कर दिया। शीघ्र ही तमोलिन से विदा होकर मैं स्टेशन पहुँचा। वहां से बनारस को रवाना हुआ। वहां मालूम हुआ कि मेरा सोने का घर मिट्टी में मिल गया। फूट फूटकर रोया। लेकिन अब रोना व्यर्थ था। तुम्हें बहुत तलाशा, लेकिन तुम्हारा भी पता न चला। तुम्हारी ससुराल में भी पूछा। उन लोगों ने कुछ ठिकाना बताया, परन्तु मेरे लाख कोशिश करने पर भी तुम नहीं मिल सके। सब तरह से निराश होकर अपनी ससुराल में गया। वहां लोगों ने बताया कि लड़की भी मरी, लड़की की मां भी मरी, बाप भी मरे। अपना सा मुँह लेकर वहां से भी वापिस आया। तब से बनारस ही में हूँ। लड़कियों के मां बाप नहीं मानते हैं, इसलिए इस साल शादी भी करने वाला हूँ।

यह सब कह कर त्रिवेदीनारायण ने अपनी कहानी समाप्त की और रामकिशोर से अपनी बातें सुनाने का अनुरोध किया।

[१६]

मेरी कहानी तो तुम सुन चुके—रामकिशोर ने उत्तर दिया।

त्रिवेदी नारायण ने कहा—बहाने न करो, यह बताओ कि तुम घर तक कैसे पहुँचे ? पैसा तो पास था नहीं।

रामकिशोर ने कहा—यह सब कुछ न पूछो। बाद को यह काम उतना कठिन नहीं रह गया जितना मैंने शुरू में सोचा था। दो तीन दिन तो मैंने ख़ूब तकलीफ़ उठाई और अधिकांश में तुमसे भेंट हो जाने के लिए। लेकिन जब यह विश्वास हो गया कि तुम्हारा मिलना अब असम्भव है तब हवड़ा स्टेशन तक पहुँच कर भी मैं तुरन्त ही दूसरी गाड़ी से बिना टिकट ही वापिस आया। यहां बनारस के स्टेशन पर टिकट मांगा गया तो मैंने कह दिया कि खो गया। आप मेरा कोट नीलाम करके टिकट वसूल कर लीजिए। अन्त में एक परिचित व्यक्ति मिल गये। उनकी कृपा से मैं इस झंझट से छूटा। बस, या और भी कुछ जानना चाहते हो ?

त्रिवेदीनारायण ने कहा—ख़ैर, मालूम हो गया कि तुम साफ़ ही बच आये। मैं ही फँसा तो दलदल में फँस गया।

रामकिशोर ने तुरन्त ही सिर हिलाते तथा एक विचित्र दृष्टि-विक्षेप करते हुए मुसकराकर कहा—हज़रत, आपने मज़ा भी तो लूटा। मैं तो बिलकुल बैरंग वापिस आया। हां, वहां की कसर मैंने घर पर अच्छी तरह निकाल ली। शीघ्र ही पिता जी ने विवाह कर दिया, पढ़ाई-लिखाई भी छूट गई। तब से मौज ही है। आराम से दिन कटते हैं। मैंने तो सोच लिया है कि पिता जी रुपया कमाने के लिए संसार में आये हैं और मैं आया हूँ आनन्द करने के लिए।

त्रि०—अच्छा, मेम साहब का क्या हाल-चाल है ?

रा०—अच्छा हाल है, शौक़ीन तबिअत हैं, कभी बाँसुरी बजाती हैं, कभी हारमोनियम, स्वर तो ऐसा है जैसे कोयल का।

त्रि०—इतनी तारीफ़ क्यों कर रहे हो ? दिखाना-विखाना तो है ही नहीं।

रा०—अफ़सोस मित्र ! आजकल वह यहीं मायके में है, मेरा बस नहीं है, नहीं तो तुमसे क्या छिपाना था।

त्रि०—अच्छा तो आगे का क्या प्रोग्राम है। चलो पहले नहा तो लो।

दोनों मित्र उठे और त्रिवेणी की ओर चले। आने जाने

वाली सुन्दरियों पर गहरी दृष्टि डालते हुए दुचित्ते ढंग से रामकिशोर ने कहा—अभी इलाहाबाद में के रोज़ ठहरोगे ?

त्रि०—ठहरने का विचार तो बिलकुल नहीं है। आज ही बनारस लौट जाना चाहता हूँ। स्नान करने के लिए ज़रा रुक गया, नहीं तो घर पर बहुत काम है।

रा०—काम क्या है ? वहां कौन तुम्हारे लिए थाल परोसे बैठा है ?

त्रि०—यह सही है कि मैं स्त्री-विहीन हूँ, लेकिन मेरी वृद्धा विधवा चाची जो अपने मायके में चली गई थीं घर पर रहने लगी हैं और मेरी चचेरी बहिन के गाँव की एक अनाथ ब्राह्मण लड़की भी मेरी आश्रिता है।

रामकिशोर ने मज़ाक़ के ढंग से कहा—क्या उसीसे विवाह करने की इच्छा है ? बहुत ख़ूबसूरत होगी। तब तो भाई, जल्दी जाओ।

अजी नहीं, वह तो मुझे मामा कहती है, उसकी शादी कहीं कर दूँगा, त्रिवेदीनारायण ने तुरन्त ही कहा।

इसी तरह बातें करते हुए दोनों मित्र उद्दिष्ट स्थान पर पहुँच गये। रामकिशोर ने स्नान किया। फिर दोनों लौटे।

त्रिवेदी नारायण ने कहा—रामकिशोर मेरे डेरे तक तो चलोगे न ?

रामकिशोर—मित्रवर ! अब बनारस ही में मिलूँगा, कल ठहरते तो मैं ज़रूर ही मिलता। आज तो ज़रूरी काम ले लिया है। यह क्या जानता था कि तुमसे भेंट हो जायगी।

बाँध के आगे दोनों व्यक्ति एक दूसरे से विदा हो कर अलग हो गये।

[१७]

संध्या समय त्रिवेदीनारायण त्रिवेणी के बाँध की ओर घूमने के लिए गये। वेषभूषा से अमीर आदमी समझ कर एक मल्लाह ने कहा—हुज़ूर कहिए तो नाव पर आप को सैर कराऊं। वसन्त ऋतु थी। धीमी-धीमी हवा बह रही थी। बात त्रिवेदीनारायण को जँच गई। नाव पर बैठाकर मल्लाह क़िले के पास यमुना के तट से त्रिवेणी की ओर ले चला। थोड़ी देर में चाँदनी रात छिटिक आई, चन्द्रमा और ताराओं का यमुना की तरंगों में झलमलाता हुआ प्रतिबिम्ब अनूठी शोभा की सृष्टि करने लगा। उन दिनों त्रिवेणी का संगम अरइल के और आगे चला गया था। परन्तु इस अपूर्व शोभाके रस का पान करते हुए त्रिवेदीनारायण अपने आप को भूल गये और संगम के पास पहुँचने पर भी यदि

ल्लाह उन्हें और आगे लिये जाता तो उनको कुछ भी ख़याल होता। परन्तु एकाएक पास ही से रोने-चिल्लाने की आवाज़ आई और उनकी आनन्द-समाधि टूट गई। बहुत अधिक बेचैनी का अनुभव करते हुए उन्होंने मल्लाह से कहा—क्यों जी यह रोने की आवाज़ कहां से आ रही है।

यह तो संसार है, सरकार! कोई रोता है, कोई गाता है, इसके लिए आप कहां तक चिन्तित होंगे—मल्लाह ने उत्तर दिया।

त्रिवेदी नारायण ने कहा—नहीं, नहीं, इस रोने में बड़ी करुणा है, मल्लाह! मेरा हृदय अधीर हो रहा है। इसी सामने के गांव से यह आवाज़ आ रही है। यह कौनसा गाँव है?

इस गांव का नाम अरइल है बाबू साहब!

क्या कहा? अरइल? अरइल तक आ गये! मैं तो समझता था कि अभी अरइल बहुत दूर होगा। अच्छा तो कहीं नाव खड़ी करो मल्लाह! मैं इस रोनेवाले से भेंट करने के लिए उत्सुक हूँ, मल्लाह ने कहा—बहुत अच्छा सरकार!

———:o:———

[१८]

किनारे उतर कर त्रिवेदी नारायण ने मल्लाह को नाव के साथ छोड़ दिया और स्वयं गाँव की ओर बढ़े। थोड़ी ही दूर जाने पर उन्हें वह आवाज़ बहुत निकट से आती जान पड़ी। शीघ्र ही यह निश्चय हो गया कि सामने के झोपड़े में एक स्त्री रो रही है। स्त्री का रोना समझ कर वे कुछ संकोच में पड़ गये, किन्तु मौके से एक वृद्धा स्त्री झोपड़े में से निकली।

त्रिवेदी नारायण ने वृद्धा से पूछा—माता, यह कैसी बात है ? यह स्त्री इतना क्यों रो रही है ?

बाबू जी ! मैंने बहुत जानने की कोशिश की, लेकिन वह रोने के सिवा कुछ और कहती ही सुनती नहीं—वृद्धा ने उत्तर दिया।

तुम्हें जाने की जल्दी तो नहीं है, कुछ देर मेरे साथ ठहर सकती हो ? त्रिवेदीनारायण ने पूछा।

आप चलिए बाबू जी, जो चुप हो जाय तो बहुत अच्छा।

त्रिवेदीनारायण ने कहा—मेरे जाने में एतराज की कोई बात तो नहीं है, बूढ़ी !

नहीं, कुछ भी नहीं, बाबू जी ! आप ही लोगों का तो माँग

कर खाती-पीती है, आप ही से दूर भागेगी तो कैसे काम चलेगा।

त्रि०—क्या यह भिखारिनी है ?

बूढ़ी—हां, बाबू जी, इसी तरह तो पेट पालती है। हम लोगों से भी जो कुछ बन पड़ता है वह सहायता कर देती हैं। बड़ी भलेमानुस है।

त्रि०—आख़िर कुछ अन्दाज़ भी नहीं मिला कि वह क्यों रोती है ?

बू०—बाबू जी ! इसी तरह यह महीने पन्द्रह दिन में एक बार रो लेती है, हम सब को यह पता नहीं चलता कि वह क्यों रोती है, न चुप कराने से चुप होती है, और न रोने का कोई कारण बताती है।

त्रि०—इसकी यह आदत कितने दिन से है ?

बू०—जब से इस गाँव में आई है तभी से यह आदत है बाबू जी !

त्रि०—कितने दिन से इस गाँव में है ?

बू०—कोई साल भर के लगभग हो गया होगा।

त्रिवेदीनारायण को इस रोने वाली स्त्री के जीवन में कुछ रहस्य जान पड़ा। उत्सुक होकर उन्होंने कहा—माता आगे आगे चलो, मैं इससे कुछ बातें पूछूँगा।

---

[१६]

स्त्री के रोने का स्वर अब आप ही आप कुछ मन्द पड़ गया था।

बूढ़ी ने स्त्री को हिला-डुलाकर कहा—चुप हो जाओ, देखो बाबू जी तुमसे क्या पूछते हैं।

बूढ़ी की आवाज़ शायद स्त्री के कानों में पड़ गई, क्योंकि उसने तुरन्त ही रोना बन्द करके आँचल के छोर से आँसुओं को पोंछना शुरू किया। त्रिवेदीनारायण ने उसी समय पूछा—देवी, तुम इतना क्यों रो रही हो?

स्त्री ने कुछ उत्तर न दिया। ऐसा जान पड़ा जैसे उसके रोने का प्रवाह बहुत अधिक वेग से फिर उमड़ने वाला हो और उसने उसे संयत करने का भरसक प्रयत्न किया हो। वह कुछ बोली नहीं, बोल सकती थी या नहीं, यह कह नहीं सकते।

त्रिवेदीनारायण ने अपने प्रश्न को दुहराया। इस बार स्त्री [...] क्षीण स्वर में कहा—महाशय! आप मेरे कष्टों का हाल पूछ[...]र क्या करेंगे? मेरा तो यह जीवन भर का रोना है।

त्रि०—फिर भी मनुष्य ही मनुष्य की सहायता करता है। यदि तुम्हारे जीवन में कुछ अधिक सुविधाएँ बढ़ाई जा सकेंगी [...]तो मैं कुछ न कुछ उद्योग करूँगा।

स्त्री ने आँखों के कोनों में छिपे-से बैठे हुए आँसुओं को [...]पोंछकर एक बार बड़े ध्यान से त्रिवेदीनारायण की ओर देखा, [...]सकी दृष्टि से कुछ आश्चर्य और कुछ अविश्वास का भाव [...]कट हुआ। त्रिवेदीनारायण उसकी एकाग्रदृष्टि से कुछ सहम उठे। उन्हें आप ही आप यह अनुभव हुआ कि यह स्त्री किसी [...]साधारण कुल की नहीं है, केवल दुर्भाग्य से इसकी यह अवस्था है। वे और भी उत्सुक हो गये।

स्त्री ने क्षण भर के बाद ही अपनी दृष्टि दूसरी ओर कर ली। त्रिवेदीनारायण ने फिर साहस करके कहा—देवी, यदि मैं तुम्हारे कष्टों को जान जाऊँगा तो इससे तुमको कोई हानि नहीं होगी, यद्यपि यह भी नहीं कह सकता हूँ कि ऐसा करने से तुम्हें कोई लाभ हो सकेगा या नहीं। जो हो मेरी उत्कण्ठा अवश्य ही शान्त हो जायगी। यदि उचित समझो तो कहो।

---

[२०]

सहानुभूति और दया के स्वर में एक ईश्वरीय बल रहता है। उसने स्त्री पर भी प्रभाव डाला और अब वह त्रिवेदी-नारायण से बोली—महाशय मैं अपने कर्मों को रोती हूँ। एक बहुत बड़े कुल में मेरा जन्म हुआ और उससे भी बड़े कुल में विवाह। परन्तु मेरे दुर्भाग्य ने मेरी यह दशा कर डाली है कि साधारण से साधारण व्यक्ति मेरा अपमान कर देते हैं। अपमान की चोट से विकल होकर मैं रोती हूँ और जी भर रो लेने के बाद आप ही आप कुछ सांत्वना पा जाती हूँ।

स्त्री को ईश्वर ने अद्भुत रूप दिया था। जिस समय वह यह कह रही थी उस समय उसका यह रूप और भी मनोहर हो रहा था। जिन्हें प्रकृति ने सुन्दर बना रखा है उनकी सुन्दरता की साड़ी में दुःख और चिन्ता भी गोटे बन कर रह जाती हैं। इस अपूर्व सौन्दर्य का त्रिवेदीनारायण पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह

सका। उन्होंने फिर पूछा—देवी, क्या मैं यह जान सकता हूँ कि तुम्हारा जन्मस्थान कहाँ है?

त्रिवेदीनारायण के स्वर में और भी अधिक सहानुभूति का प्रभाव स्पष्ट था।

स्त्री ने उत्तर दिया—मेरे पिता लखनऊ के रहने वाले थे और कलकत्ते में एक बहुत बड़े पद पर नौकर थे। मैं उनकी एकमात्र कन्या हूँ।

यह कह कर स्त्री रुक गई। जान पड़ा जैसे कुछ और कहने वाली थी, लेकिन कुछ सोचकर चुप रह गई। थोड़ी देर के बाद वह फिर बोली—मेरे मातापिता का स्वर्गवास हो गया, सास भी इस लोक में न रहीं; पति क्या जाने कहाँ परदेश में चले गये और फिर लौट कर न आये। ससुर साधु हो गये। इस प्रकार मायका और सासुर दोनों को तबाह करके मैं अपना जीवन इस प्रकार बिता रही हूँ।

त्रिवेदीनारायण की आश्चर्य-मिश्रित उत्कण्ठा का पार न रहा। शीघ्र ही पूरा तथ्य जान लेनेकी इच्छा से उन्होंने पूछा—देवी, क्या मैं जान सकता हूँ कि तुम्हारा विवाह कहाँ हुआ था? किन्तु तुम्हारी और मेरी कथा में इतना सादृश्य है कि मैं तुम्हें अपना परिचय देकर इस प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। मैं बनारस के पं० सदानन्द त्रिपाठी का एकमात्र लड़का हूँ और त्रिवेदीनारायण मेरा नाम है। मैं विवाह होने के बाद

अपने एक मित्र के साथ कलकत्ते भाग गया था, वहाँ से अनेक वर्षों बाद स्वदेश को लौटा तो देखा कि घर और ससुराल दोनों मिट्टी में मिल गये। ससुर स्त्री और माँ के बारे में सुना कि वे इस लोक में नहीं हैं तथा पिता जी साधु हो गये, आदि आदि।

त्रिवेदीनारायण का यह कथन सुनने के बाद स्त्री का सिर चक्कर खाने लगा और अपने को सम्हालने में असमर्थ होकर वह मूर्च्छित हो गई।

संदेह का कीड़ा

रे धीरे ग्यारह वर्ष बीत गये । एक दिन
पं० त्रिवेदीनारायण के यहाँ भीख माँगता
हुआ कोई सोलह वर्ष की अवस्था का
एक भिखारी बालक आया । था तो
काला, लेकिन देखने में बड़ा भला लगता
एक पुरानी तुर्की टोपी, बदन पर एक फटा

कुर्ता, और कमर में एक मैला-कुचैला पाजामा था। पंडित जी अपने बँगले में काम कर रहे थे, चपरासी का ध्यान कहीं और था, इतने में बिना इत्तिला कराये ही उसने कमरे के अन्दर प्रवेश किया और वह सलाम करके एक कुर्सी पर बैठ गया। पंडित जी ने कुछ आश्चर्य्य से पूछा, तुम कौन? उत्तर मिला—हुज़ूर, मैं एक भिखारी हूँ, चाहता हूँ कि आप मेरी सहायता करें। पंडित जी ने रूखे स्वर से उत्तर दिया—मैं भिखारियों की सहायता नहीं करता, यह मेरे सिद्धान्त के विरुद्ध है, जाओ काम ढूँढ़ो और कमाओ खाओ। पंडित जी यह कहकर अपने काम में लगना ही चाहते थे कि भिखारी ने फिर कहा—हुज़ूर, मुझे काम करने से एतराज़ नहीं, आप काम दिलाइये। पंडित जी ने अपनी किताब पर ही दृष्टि किये हुए कहा—जाओ अपने मुसलमान भाइयों से कहो, हम तो हिन्दुओं ही की पूरी पूरी चिन्ता नहीं रख सकते।

भिखारी—हुज़ूर, मुसलमान भाइयों के यहाँ हो आया, सब अपने-अपने काम में लगे हैं, कोई नहीं सुनता। अब आप के पास हाज़िर हुआ हूँ।

पंडित जी—तो तुर्की टोपी उतारकर आर्य्य-समाज में शुद्ध हो जाओ, हम तुम्हें काम दिला देंगे।

भिखारी—नहीं हुज़ूर, रोटी के लिए मैं अपना मज़हब नहीं छोड़ सकता।

यह कह कर वह शीघ्रता के साथ कमरे के बाहर हो गया और बड़ी देर तक बँगले के कम्पाउण्ड में घूमता रहा कुछ देर के बाद वह पेड़ के नीचे बैठ गया और एक किताब खोलकर पढ़ने लगा। इतने ही में ज़नाने मकान में से एक मज़दूरिन ने आकर अचानक पूछा—क्या तुम भिखारी हो उसने कहा, हां। मज़दूरिन ने कहा, चलो मालिकिन का हुकुम तुम्हें भोजन देने का है। वह बोला, लेकिन मैं तो मुसलमान हूं। मज़दूरिन ने कहा, क्या समझते हो कि तुम्हे चौके में बैठाकर खिलायेंगे, अलग खा लेना।

भरपेट भोजन कर लेने के बाद भिखारी को आज्ञा मिली कि बरामदे में सोओ। भाग्य की बात कि दो तीन घण्टे में स्वयं पंडित जी ने आकर कहा, अच्छा हमीं ने तुम्हें नौकर रख लिया, तुम्हें चपरासी का काम करना होगा। भिखारी ने कहा, लेकिन हुज़ूर अपना धरम छोड़ने को मुझसे न कहियेगा। पंडित जी ने हँस करकहा—अजी, हम ज़बरदस्ती हिन्दू थोड़े ही बनाते हैं।

—:o:—

[२२]

शाम के वक्त भिखारी को एक चारपाई और बिस्तर दिये गये, खाने को पूड़ी मिली। पंडित जी घूमने कहीं चले गये थे, वह बरामदे में बैठा हुआ अँग्रेज़ी भाषा की एक किताब देख रहा था। इतने ही में किवाड़ की आड़ में उसे एक सुन्दरी स्त्री, जिसकी अवस्था कोई ३५ वर्ष की होगी, दिखलाई पड़ी। स्त्री ने पूछा—चपरासी, तुम्हारा नाम क्या है? चपरासी ने उत्तर दिया—अलीहसन। स्त्री ने फिर पूछा—तुम्हारे माँ बाप हैं, या मर गये? अलीहसन ने कहा—हुज़ूर, माँ बाप ही होते तो यह हालत

होती ? मुझे तो यह भी नहीं मालूम कि मेरे कोई बाप था या नहीं, माँ की भी मुझे बिलकुल याद नहीं। बस, इतना मुझे याद है कि एक दिन शाम को मेरी माँ बर्त्तन लेकर नदी में माँजने गई, उसके साथ मैं भी गया, उसने नहा लेने के बाद मुझे नहलाना शुरू किया। मेरा पैर कुछ गहरे चला गया, मैं डूबने लगा, जल्दी और घबराहट में माँ के पैर भी गहरे चले गये, फिर मुझे नहीं मालूम कि माँ क्या हुई और मैं किस तरह बचा। स्त्री भीतर चली गई और पाँच मिनट में लौट कर अलीहसन से बोली—लो अपनी सब पोशाक उतारकर अलग कर दो, और यह चपरासी की पोशाक पहिन लो। 'जो हुकुम' कहकर अलीहसन ने अपनी टोपी और मैला कुर्त्ता उतार दिया। इसके बाद स्त्री चली गई, पोशाक पहिन चुकने पर लालटैन के सामने अलीहसन फिर किताब देखने लगा।

—:o:—

[२३]

श्री त्रिवेदीनारायण के कोई सन्तान नहीं थी, एक लड़की हुई थी, लेकिन दो-तीन वर्ष जीकर मर गई। परन्तु इसके कारण वे उदास नहीं दीखते थे। वे कहा करते थे कि हिन्दू जाति के समस्त अनाथ बालकों को मैं अपना ही बालक समझता हूँ। उन्हें प्रसन्न देखता हूँ तो मेरी छाती फूल जाती है, उन्हें कुम्हलाये फूल की तरह देखता हूँ तो मेरा कलेजा बैठ जाता है। शुद्धि के वे बड़े पक्षपाती थे, यदि कोई मुसल्मान या ईसाई शुद्ध होने की इच्छा प्रकट करता, तो वे समझते थे

मानों स्वर्ग मिल गया। इस सम्बन्ध में उनका उत्साह इतना अधिक था कि लोग उनके स्वभाव में इसे दुर्बलता समझने लगे थे।

पंडित जी टहलकर आठ बजे आये, भोजन करके चार-पाई पर लेट रहे। वही स्त्री जिसकी चर्चा हम कर आये है, उनके पास आकर एक कुर्सी पर बैठ गई। पंडित जी ने कहा—क्यों, अलीहसन तो बहुत सीधा जान पड़ता है। स्त्री ने कहा—सीधा तो है ही, काम में होशियार भी है। कितना अच्छा होता यदि यह हिन्दू होता। पंडित जी ने कहा—ख़ैर ग़रीब आदमी है, बेचारे की इसी बहाने सहायता हो जायगी। स्त्री बोली—क्यों, जब तुमने कहा था कि हिन्दू होगे या नहीं, उसने क्या उत्तर दिया था? पंडित जी ने उत्तर दिया, उसने कहा मैं रोटी के लिए अपना धर्म्म नहीं छोड़ूँगा। यह सुनकर स्त्री ने एक ठण्डी साँस भरी, परन्तु पता नहीं पंडित जी ने इस ओर ध्यान दिया था नहीं।

पाठक यह समझ ही गये होंगे कि यह स्त्री और कोई नहीं, त्रिवेदीनारायण की धर्म्मपत्नी थी। दूसरे दिन जब पडित जी घूमने चले गये तब वह फिर आकर किवाड़ की आड़ में खड़ी हुई। उसने पूछा—चपरासी, तुम्हारी तबियत यहाँ लग तो रही है न? अलीहसन ने उत्तर दिया—हुज़ूर आप लोगों की मेहरबानी से मुझे सब आराम है।

स्त्री—अलीहसन ! हमारे यहाँ आने के पहले तुम कहाँ किसके यहाँ थे ?

अलीहसन—हुज़ूर ! एक मौलवी साहब के यहाँ था। उन्होंने लड़कपन से ही मेरी परवरिश की थी, लेकिन वे मुझसे काम बहुत लेते थे और मुझे कोई किताब लिये देखते थे, तो मारने दौड़ते थे। मुझे किताब पढ़ने का बड़ा हौसला है, इसी से मैं उनके यहाँ से भाग आया, तब से घर घर भीख माँग कर ही पेट पालता रहा, अब हुज़ूर ने मेहरबानी की है।

स्त्री—तुम्हें हमारे यहाँ कोई तकलीफ़ न होगी। हाँ, हमारे यहाँ रहकर तुम किसी तरह का मांस नहीं खा सकते, हम लोग सफ़ाई बहुत पसन्द करते हैं, इसलिए तुम्हें रोज़ नहाना पड़ेगा, तुम्हारे पहिनने के कपड़ों का कल प्रबन्ध करा दिया जायगा। अगर सफ़ाई में कमी हुई, तो तुम निकाल दिये जाओगे। क्योंकि, तुम्हारे मालिक गन्दगी बहुत नापसन्द करते हैं,। तुम्हारी ग़रीबी देखकर मैंने तुम्हारी सिफ़ारिश करके तुम्हें नौकर रखाया है, इस बात को मत भूलना।

स्त्री की यह बात सुनकर अलीहसन ने कहा—जैसा हुकुम सरकार का।

पंडित जी के आने का समय निकट जान स्त्री भीतर चली ई। अलीहसन लालटेन के सामने किताब देखने लगा।
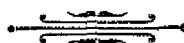
[२४]

अलीहसन को मालिक के यहाँ से एक जोड़ा धोती, एक जोड़ा कुर्ता और कोट, एक टोपी और एक जोड़ा बढ़िया देसी जूता मिला। मालकिन की आज्ञा हुई कि उसे अलग भोजन बनाने की ज़रूरत नहीं, जैसे रसोई के कहार को खाना मिलता है वैसे उसके लिए भी बाहर भेज दिया जाया करे। अली-हसन को इस प्रबन्ध से बहुत सुभीता था, इस लिए वह इससे बहुत प्रसन्न हुआ।

एक दिन पंडित जी दो-तीन दिनों के लिए बाहर चले

गये। अलीहसन बहुत खुश हुआ, क्योंकि यद्यपि वे उस पर बड़ी कृपा-दृष्टि रखते थे, तथापि वह उनसे बहुत डरता था। घर में और कोई ऐसा नहीं था, जिसकी उपस्थिति में उसे कुछ घबराहट मालूम हो, मालकिन से तो वह इतना हिल गया था कि यदि वह उनसे कोई अटपटी बात भी कह देता तो वे बुरा नहीं मानती थीं। जिस दिन पंडित जी गये, उसी दिन की शाम की बात है कि भीतर औरतें गाना गा रही थीं। अली-हसन बरामदे में बैठा हुआ उनके स्वर की मधुरिमा का रस-पान कर रहा था। एकाएक वह बोल उठा—हारमोनियम ठीक नहीं बज रहा है। जिस कमरे की किवाड़ की आड़ में खड़ी होकर कुसुम अलीहसन से बातचीत किया करती थी, उसी में यह संगीत हो रहा था। मालकिन ने अलीहसन की यह बात सुन ली और कहा—क्यों, क्या कह रहे हो चपरासी ? अली-हसन ने लज्जित होकर कहा—कुछ नहीं हुजूर। मालकिन बोलीं—नहीं तुमने कहा है कि हारमोनियम ठीक नहीं बज रहा है, आओ तुम्हीं को बजाना होगा। कमरे में एक बूढ़ी स्त्री भी बैठी थी, उसने कहा—कुसुम, तुम यह क्या अन्धेर कर रही हो, तुम्हें क्या यह याद नहीं कि हम लोग परदे में रहती हैं, यहाँ मुसल्मान चपरासी को कैसे बुला रही हो ? कुसुम ने उत्तर दिया—अम्मा ! बड़ा सीधा है, पूरा गऊ सा लड़का है, तुम चिढ़ो मत, आने दो, मुझसे वह बोलता ही है,

तुम्हें वह देखता ही है, चिक की आड़ में जरा बैठकर बजा देगा, क्या हर्ज है। कुसुम के इस कहने पर अम्मा कुछ नहीं बोलीं, अलीहसन भीतर आया, और चिक की आड़ में बैठकर हारमोनियम ठीक करने लगा।

अम्मा ने कहा—क्यों चपरासी, तुम्हारे धरम में भी तो भजन होता होगा, एक सुनाओ तो सही। अलीहसन बोला, हुजूर, भजन-वजन तो मैं कुछ नहीं जानता। अगर हुक्म हो तो एक गाना जो मुझे बहुत प्यारा है, आप को सुनाऊँ। आज्ञा मिलने पर अलीहसन ने गाया—

ख़ुदा किया क्यों ज़मीं पै पैदा
जो ठोकरें था सदा खिलाना ?
दिया ही फिर आदमी का तन क्यों,
किसी ने जब आदमी न माना ?
तमाम ऐशो आराम में है,
गुज़ारता ज़िन्दगी को कोई।
हमें है दुशवार सांस लेना,
है रात-दिन अश्क़ ही बहाना।
नहीं समझता कोई कि हम सब,
बने हैं बस मुश्ते ख़ाक से इक।
अमीर को भी ग़रीब को भी,
है एक दिन ख़ाक ही हो जाना।

कुसुम पानी पीने के बहाने से एक दूसरे कमरे में चली गई। अम्मां के ऊपर बहुत बड़ा असर हुआ, उन्होंने अली-हसन के साथ कभी-कभी रूखा बर्ताव भी किया था, इसका ख़याल करके उन्हें उसके प्रति अपने व्यवहार पर कुछ खेद सा हुआ। इतना तो वे मान ही गईं कि यद्यपि अलीहसन मुसल्मान है और नौकर है, तथापि उसमें अनेक ऐसे गुण हैं जिनके कारण उसके साथ अधिक सुन्दर व्यवहार करना चाहिए। कमला अलीहसन का गाना सुनकर मुग्ध हो गई। उसने अपने हृदय में कहा—हाय! यह मेरी जाति का क्यों न हुआ!

[२५]

दूसरे दिन जब भोजन तय्यार हुआ, अलीहसन को आज्ञा हुई कि वह भीतर ही चला आवे। उसके सामने कुसुम ने अब चिक की आड़ अथवा किवाड़ की ओट लेनी भी बन्द कर दी, बल्कि उसने तो यहाँ तक किया कि भोजन का पत्तल रसोई से लेकर उसके पास तक रख भी आई। अम्मा ने भी अलीहसन से कुछ परदा नहीं किया, लेकिन कुसुम से बोलीं—क्यों क्या कहारिन नहीं थी? ऊपर से इन शब्दों का यही मतलब जान पड़ता था कि कहारिनों के रहते हुए भी कुसुम का यह कष्ट

क्यों उठाना पड़ता है, परन्तु उनके भीतर यह ध्वनि निकलती थी कि मुलस्मान नौकर कितना भी अच्छा क्यों न हो, हमें बहुत अधिक आदर न देना चाहिये। परन्तु समय-समय पर इसी तरह कुछ कह देने के सिवा घर में अम्मा का और कोई काम न था। वे अपने इस कार्य्य को उतना ही महत्त्व-पूर्ण और आवश्यक समझती थीं जितना कि पेंशन पानेवाला नौकर अपने मालिक की ख़ैरख़्वाही करने को समझता है। कुसुम उनकी बातों को ध्यान से सुन लेती थी, किन्तु हमेशा करती थी अपने ही मन की। लेकिन, अम्मा की इस बार की बात से वह कुछ सहम सी गई, वह जान गई कि इतनी स्वतंत्रता लेना अच्छा नहीं, परन्तु उत्तर में यही कहकर कि क्या हर्ज है, लड़का तो है, उसने सारी बात टाल दी।

भोजन से निपट लेने के बाद कुसुम ने अलीहसन से पूछा, क्यों, चपरासी! तुम्हें अपने पुराने मालिक के यहाँ खाने को क्या मिलता था? अलीहसन बोला—हुजूर उनके यहाँ तो मैंने पेट भर के खाना कभी नहीं खाया, दो-तीन रोटी, थोड़ी दाल और ज़रा सा वह......

कुसुम—वह क्या चपरासी?

अली०—हुज़ूर, वही जिसे आप बहुत बुरा समझती हैं।

कुसुम—तुम्हारा मतलब मांस से है। ठीक, अच्छा, हमारे यहाँ के भोजन को तुम कैसा समझते हो?

अली०—हुजूर, मैं क्या कहूँ, ऐसा खाना तो मुझे ज़िन्दगी भर में नहीं मिला था, खूब पेट भर के खाता हूँ।

इतनी बातचीत के बाद अलीहसन को आज्ञा हुई कि वह बरामदे में जाकर बैठे। शाम को कुसुम फिर अपने नियत स्थान पर आकर बोली—चपरासी! कल सवेरे हम लोग गंगा स्नान को जायँगे, महराज और रघुबर कहार तो जायँगे ही तुम्हें भी साथ चलना होगा, चार बजे सवेरे तैयार हो जाना। अलीहसन ने कहा—हुज़ूर मैं मुसलमान हूँ, आप के धरम के विरुद्ध तो न होगा? कुसुम ने कहा—इन बातों से तुम्हें कोई मतलब नहीं, तुम्हें केवल अपने मालिक की आज्ञा माननी होगी, शेष बातों की चिन्ता तो हम स्वयं कर लेंगे। अलीहसन ने कहा—जैसा हुक्म सरकार का।

[२६]

सबेरे पाँच बजे सब लोग गंगा स्नान के लिए गाड़ी पर चढ़ कर गये। यह बात तय पाई थी कि गंगा के उस पार भोजन बनाया जाय और देवताओं का दर्शन करते हुए शाम को सब लोग घर आ जायँ। गंगा के किनारे गाड़ीवान और गाड़ी को छोड़ कर बोट पर सवार हो कर मंडली उस पार गई। वहाँ नहाने धोने के बाद कुछ देर तक बोटिङ्ग होती रही। इसके बाद वे एक सुपरिचित स्थान पर पहुँचे। इस स्थान का प्राकृतिक सौन्दर्य्य अद्भुत था; लता, फूल, कली,

पक्षिगण, तथा गंगा की तरङ्गित शोभा आदि ने तो अपूर्व छटा की सृष्टि कर ही रक्खी थी, घण्टे के नाद से गुञ्जायमान एक मन्दिर के भीतर पूजा के लिए एकत्र नर नारी के श्रद्धा-पूर्ण प्रार्थना-गान से वहाँ का धार्म्मिक रंग भी खूब गहरा हो गया था। कुसुम, अम्मा, और कमला दर्शन के लिए चली गईं, तब तक कहार और महराज अलीहसन को साथ लेकर सुरम्य वाटिका की ओर चले और भोजन बनाने के योग्य अच्छी जगह ढूँढ़ने लगे। दस पाँच मिनट इधर उधर देख लेने के बाद उन्होंने एक जगह पसन्द की, वहाँ चारों ओर से अमरूद के पेड़ों ने घेर कर छाया कर रक्खी थी, और दस पाँच आदमियों के लिए साथ बैठ कर खाने का काफ़ी सुभीता था। अलीहसन अलग जाकर बैठा। कहार उपले लाने के लिए कहीं चला गया, थोड़ी देर में लौट कर उसने बाटी बनाने के लिए दो जगह उपलों का ढेर लगाया, और उनमें आग डाली। इतने में अम्मा, कुसुम, और कमला भी आ गईं। अम्मा ने कहा—क्यों महराज, अभी आग ही जली है, इतनी देर तक क्या कर रहे थे? यह सभी लोगों को अच्छी तरह मालूम था कि अम्मा की बातें यों ही हुआ करती हैं, उन्हें केवल सुन लेना चाहिए और उत्तर देने की विशेष चिंता न करके दीन भाव से केवल दो चार शब्द धीरे से कह देना चाहिए—इतने धीरे से कि अम्मा उसे सुन भी न पावें। इस क्रिया की आवश्यकता

सभी नौकर समझते थे, क्योंकि उसके अभाव में अम्मा की नाराज़ी ही परिणाम होता था, और अगर उसकी मात्रा विशेष हो गई तो चूंकि पंडित जी उनकी कोई बात नहीं टालते थे, नाराज़ी और बरख़ास्तगी दोनों का प्रायः एक ही अर्थ हो जाया करता था। अब की बार भी महराज ने इस क्रिया का अवलम्ब लिया। इतने में कुसुम ने कहा—महराज, तुम अपने लिए अलग बना लो, और सब के लिए आज मैं ही बाटी बनाऊँगी। अम्मा ने कहा—कुसुम, तुझे सनक आ जाती है क्या, थकी माँदी आकर अब तू आग और धुएँ के सामने बैठ कर पाँच आदमियों के लिए भोजन बनावेगी? कुसुम बोली—अम्मा, महराज के हाथ की तो रोज़ खाती हो, आज मेरे हाथ की भी खा लो। कमला बहुत खुश हुई, उसने कहा—मामी, तुम आज महराज बन रही हो तो कहार का काम मुझे करने को दो। अम्मा खीझ कर बोलीं—अरे तुम लोगों को क्या हो गया है, कुछ पागल तो नहीं हो गई हो? क्या मुझे मुँह बाँधकर ही बैठना पड़ेगा? कुसुम ने हँस कर कहा—अम्मा देखती तो रहो बात की बात में भोजन बनाती हूँ। हाँ यदि मुँह बाँधकर बैठना न अच्छा लगे तो तुम्हें एक भजन बतला दूँ। अम्मा को नई भजनें सीखने का बड़ा शौक़ था, बहुत खुश होकर उन्होंने सरल भाव से कहा—अच्छा फिर वह बता ही दे। कुसुम ने यह भजन बताया :—

कृपा करो हे गिरिधारी।

मेरा संकट काटो झटपट हरो सकल पीड़ा भारी। :

बाटी दाल खिला दो चटपट भूख मिटे मेरी सारी।

इस भजन की तीसरी लाइन के आरम्भिक शब्दों को सुनकर सब के सब हँस पड़े, अम्मा तो लोट पोट हो गईं।

डेढ़ घण्टे के अन्दर बाटी दाल वगैरह सब कुछ तैयार हो गया। कुसुम और कमला दोनों ने पत्तलों पर परसना शुरू किया। जब परसा जा चुका और सब के लिए पानी रख लिया गया तब कुसुम ने अलीहसन से कहा—तुम भी कपड़े उतार कर और पैर धोकर आ जाओ। अम्मा ने भौंहें टेढ़ी करके कहा—कुसुम, क्या नौकरों को भी साथ खिलावेगी, यह बात ठीक नहीं है, भैया इसे जानेंगे तो क्या कहेंगे, अपनी मर्य्यादा इस तरह न मिटानी चाहिए, बहू। कुसुम ने हँस कर कहा—अम्मा राम के यहाँ सब आदमी बराबर हैं, यहाँ हम लोग पूजा और आनन्द के लिए आये हैं, साल में एक बार तो सब को बराबर समझ लें, फिर, हमारे पास बैठ कर थोड़े ही ये लोग खायँगे, ये लोग अलग ले जाकर ही खा सकते हैं, हम लोग खायँ और ये लोग बैठे बैठे देखें, यह भी तो अच्छा नहीं है। यह सुनकर अम्मा चुप रह गईं। कहार, और अलीहसन के लिए दो पत्तलें कमला ने बाहर कर दीं। कहार दोनों को उठा कर अलग ले गया, एक पत्तल उसने

अलीहसन को दे दिया और उससे कुछ दूर जाकर खाने लगा।

कुसुम ने खाते हुए सिर उठा कर देखा तो अलीहसन को बहुत दूर खाते पाया, वह बेचारा कुछ तो स्वाभाविक संकोच के कारण बिलकुल आड़ में और कुछ अम्मा के डर से बहुत अलग चला गया था।

खा चुकने पर कुसुम ने अलीहसन से पूछा—क्यों चपरासी! बाटी कैसी रही? अलीहसन ने सिर नीचा कर के कहा—बहुत बढ़िया। कोई चार बजे तक मण्डली घर पहुँची। आठ बजे रात की गाड़ी से पंडित जी भी आ गये।

[२७]

एक दिन कुसुम ने हँसते हँसते पंडित जी से कहा—तुम बनते तो हो इतने बड़े सुधारक, लेकिन हिन्दी जानते हुए भी अपना सारा काम उर्दू और अँग्रेज़ी में करते हो। पंडित जी ने भी हँस कर कहा—सुनो, तुम घर की मालकिन हो, घर के सम्बन्ध में कोई बात कहो तो तुम्हारा अधिकार कहने का है और मेरा कर्त्तव्य मानने का है, लेकिन अगर यह कहो कि ज़िमींदारी के इन्तज़ाम के मामले में अथवा सार्व्वजनिक

वक्तृता के सम्बन्ध में भी मैं तुम्हारी आज्ञा के सामने सिर झुकाया करूँ, तो वह तुम्हारा अन्याय है। कुसुम के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही यह कहते हुए पंडित जी अपने कमरे में चले गये। कुसुम अपने काम में लग गई।

उसी दिन की संध्या को पंडित जी ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी से कहा कि रिआया के सुभीते के लिए दफ़र का सब काम हिन्दी में करना होगा। सेक्रेटरी ने कहा—हुजूर, सब नौकर तो हिन्दी नहीं जानते। पंडितजी ने तुरन्त ही उत्तर दिया—तो हिन्दी सीखना ही कौन मुशकिल है, छःमहीने में सीख लें। सेक्रेटरी चुप हो रहा।

दूसरे दिन खाना खाकर जब अलीहसन बाहर जाने लगा, कुसुम ने उसे रोक लिया, पूछने लगी कि कोई कष्ट तो नहीं है। अलीहसन ने कहा—आप की मिहरबानी से मुझे कोई तकलीफ़ नहीं है, और अगर हो भी तो हम तो नौकर आदमी हैं, इसके लिए डरें तो कहाँ तक काम चल सकता है। कुसुम ने कहा—देखो, हम लोग तुम्हें सिर्फ़ नौकर समझ कर नहीं रख रहे हैं। तुम बचपन से ही बिना माँ बाप के हो, यद्यपि तुम मुसलमान हो, तथापि हम लोग तुम्हें अपने ही बच्चे सा समझ कर तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करने की कोशिश कर रहे हैं, इस दशा में यदि तुम्हें किसी प्रकार का कष्ट हुआ तो हमें बड़ा दुःख होगा। अलीहसन ने सिर नीचा कर के कहा—

हुज़र, और कुछ तो नहीं, मालिक ने हिन्दी पढ़ने का हुक्म जारी किया है, रियासत भर के नौकरों को पढ़ना होगा, अब मैं कैसे और किससे पढ़ूँ ? कुसुम ने कहा—इतना ही कहना है कि और कुछ ? अलीहसन ने कहा—इतना ही । कुसुम ने कहा—अच्छा जाओ।

[२८]

भोजन करते समय पंडित जी ने हँस कर कुसुम से कहा—जो काम मैं पचासों व्याख्यान देकर न कर सकता, उसे देखता हूँ कि तुम बिलकुल सरलता से किये जा रही हो। जिस समय आया था, कितना कट्टर था, हिन्दू होने की बात चलाते ही मेरे पास से चला गयाथा, अब कम से कम इसका रहन-सहन तो बिलकुल हिन्दू का सा हो गया है। कुसुम बोली—लेकिन तुम्हारे हिन्दी पढ़ने के आर्डर से बेचारा बहुत घबरा

रहा है। पंडित जी ने कहा—हिन्दी सीखना कथा मुशकिल है, वर्णमाला की एक किताब लेकर पढ़ ले, कई नौकर तो जानते हैं, उनसे सहायता ले ले।

अलीहसन हिन्दी की किताब ख़रीद लाया। शाम को कुसुम ने आकर कुछ बतला दिया, दूसरे दिन खाने के लिए जाते समय वह किताब साथ लेता गया, और भोजन कर चुकने पर उसने कुसुम से दो एक पन्ना पूछ भी लिया। कुसुम ने अलीहसन को ख़ूब अच्छी तरह समझा दिया।

पंडित जी जब घूमने चले गये, कुसुम ने अलीहसन को घर के अन्दर आने का हुक्म दिया। जब वह गया तो उसने अम्मा, कमला, और कुसुम को घर के आँगन में कुर्सियों पर बैठे पाया। कुसुम के बहुत कहने पर कमला बैठी रह गई, यद्यपि अम्मा को यह बहुत बुरा मालम हुआ। उनकी टेढ़ी भौंहें देख कर कुसुम उनके मनोगत भाव को ताड़ गई, बोली—अम्मा, ज़रा सुनो, इसका उच्चारण तुम्हें सुनाने के लिए इसे यहाँ बुलाया है। इतना कह कर उसने अलीहसन की ओर मुँह करके कहा—हाँ, ज़रा 'संस्कृत' तो कहना। अलीहसन को इस समय सङ्कोच का भार असह्य मालूम होने लगा, परंतु कुसुम की कृपा और वत्सलता-पूर्ण दृष्टि ने उसके हृदय में साहस का सञ्चार कर दिया और उच्चारण-सम्बन्धिनी अपनी अयोग्यता को सब के उपहास का कारण बनाने की बिलकुल परवा न करते

हुए उसने 'संसकिरत' कह ही दिया। अम्मा कुछ संस्कृत और हिन्दी अच्छी तरह पढ़ी थीं, कमला तो हिन्दी में लेख भी लिखती थी, मुसलमानों के उच्चारण का इन लोगों को कभी अनुभव नहीं हुआ था, फल यह हुआ कि अलीहसन के मुख से यह शब्द सुनकर सब लोग हँस पड़ीं, कमला तो हँसी का बहाना कर के वहाँ से अलग भी चल दी। अम्मा ने सरलता-पूर्वक कहा, हाँ, हसन, ज़रा एक बार और कहना। अलीहसन ने कहा—संसकिरत। अम्मा और कुसुम फिर हँसने लगीं। फिर थोड़ी देर के बाद कुसुम ने अलीहसन से कहा, अच्छा, जाओ बाहर बैठो। अलीहसन जाकर बरामदे में बैठा, और वर्णमाला की किताब पढ़ने लगा।

[२६]

धीरे धीरे अलीहसन को घर के भीतर आने जाने की इतनी स्वतन्त्रता प्राप्त हो गई कि उसे कुछ भी कठिनाई पड़ती तो वह मालकिन के पास बेखटके चला जाता। पंडित जी के घूमने चले जाने के बाद तो वह बरामदे में बैठता ही न था, अपनी हिन्दी की किताब लेकर वह सीधा कुसुम के कमरे में प्रवेश करता और उससे हिन्दी पढ़ता। एक बार कुसुम ने फिर अली हसन से पूछा—क्यों, अब तो तुम्हें कोई कष्ट नहीं

है। अली हसन ने कहा—हुजूर इसे व्यर्थ पूछती हैं, जब आप मुझे लड़के की तरह मान रही हैं तो मुझे कोई तकलीफ क्यों होगी। कुसम ने कहा—देखो तुम मुझे 'हुजूर' न कहा करो, यह शब्द पुरुषों के लिए ही प्रयोग में आता है, इसलिये बाबू जी को ही इसके द्वारा सम्बोधित किया करो, मुझे सब लोग 'छोटी अम्मा' कहते हैं, तो तुम भी यही कहो। अलीहसन ने कहा—जैसा हुक्म सरकार का। कुसुम ने फिर टोककर कहा—सरकार भी मुझे मत कहा करो, मुझे केवल 'छोटी अम्मा' कहा करो।

अलीहसन दोनों वक्त भोजन तो करता ही था, कुसुम औरों से छिपा कर उसे बहुत कुछ खाने को दे दिया करती थी, त्योहार के इनाम के बहाने वह एक गिन्नी से कम कभी न देती, शाम को जब वह पढ़ने जाता तो फल, मिठाई, अथवा हलुआ आदि वह अपने कमरे में रक्खे रहती और पढ़ा चुकने के बाद उसे चोरी से खाने को देती। कभी कभी अम्मा या कमला देख लेतीं तो वह चोर की नाईं लज्जित हो जाती।

तीन चार महीनों के बाद कुसुम ने रामायण पढ़ पढ़ कर अलीहसन को सुनाना शुरू किया। अलीहसन को रामचन्द्र और सीता की बनवास-कथा बहुत पसन्द आई। एक दिन कुसुम ने कहा—क्यों, हसन, अगर तुम रामचन्द्र होते, मैं कौशिल्या होती, और तुम्हें बनवास दिया जाता तो तुम अपनी अम्मा से

किस तरह विदा माँगते ? अलीहसन ने कहा—छोटी अम्मा, इन बातों में क्या रखा है, लेकिन हाँ रामचन्द्र की कथा बहुत बढ़िया है। कुसुम ने कहा—हसन, अगर तुम मेरी एक बात मानो तो मैं तुम्हारी माँ को तुमसे मिला दूँ। अलीहसन ने आश्चर्यचकित होकर कहा—छोटी अम्मा, क्या सच कहती हो, क्या मेरी माँ अभी जीवित है। कुसुम बोली—हाँ, तुम्हारी माँ जीवित है, और वह यह भी जानती है कि तुम यहाँ रहते हो, वह तुम्हें रोज़ देखती है, लेकिन तुम उसे नहीं पहचानते। अलीहसन ने कहा—तो, माँ को देखने के लिए आप की कौन शर्त्त माननी पड़ेगी, छोटी अम्मा ? कुसुम बोली—वह तुम्हें राजाराम के नाम से पुकारना चाहती है, यही तुम्हें स्वीकार करना होगा। अलीहसन ने कहा—मुझे स्वीकार है, मेरी माँ कब और कहाँ मिलेगी। कुसुम ने कहा—कल, इसी समय, और इसी कमरे में। पंडित जी के आने की वेला जान कर कुसुम ने फिर कहा—अच्छा जाओ, अपना भोजन माँग लो और खाकर बरामदे में बैठो। अलीहसन चला गया।

[३०]

कुसुम कमरे में ही चारपाई पर पड़ी रही, पंडित जी घूम कर आये, उनके पास भी वह नहीं गई, दासी बुलाने आई, उसने कह दिया तबियत बहुत ख़राब है, पंडित जी देखने आये तो पता लगा कि सचमुच उसे बुख़ार आ गया था। पंडित जी ने कुछ दवा मँगानी चाही, कुसुम ने बहुत धैर्य पूर्वक कह दिया—लंघन कर दूँगी, सबेरे तक अच्छा हो जायगा। तकिया वग़ैरह अपने हाथ से ठीक कर और चद्दर उढ़ा कर पंडित जी खाने चले गये।

दूसरे दिन सवेरे अलीहसन ने सुना कि छोटी अम्मा बीमार हैं। अन्दर जाने का एक बहाना निकाल कर वह कुसुम के कमरे में गया और दो चार मिनट तक खड़ा रहा। कुसुम ने देख कर कहा—जाओ उसी समय आना। अलीहसन उदास होकर चला आया।

अलीहसन बरामदे में बैठा हुआ मिनट मिनट गिन रहा था। रामायण पढ़ने में भी उसकी तबियत नहीं लगती थी, वह यही सोच रहा था कि यह कैसा अन्धेर है जो मेरी माँ रोज़ मुझे देखती है और मुझ से बोलती नहीं। ज्यों त्यों करके चार बजने का समय आया। आज पड़ोस में बिरादरी में ब्याह सम्बन्धी कुछ काम था, कुसुम की तबियत भी हलकी हो गई थी, पंडित जी, अम्मा और कमला वहां चली गईं, बहुत से नौकर चाकर भी धूमधाम देखने के लिए चले गये। पंडित जी दो एक नौकरानियों को कुसुम के पास रहने के लिए ख़ास हिदायत कर गये थे। थोड़ी देर के बाद कुसुम घर में इधर उधर टहलने लगी। तबियत सुधरी देख एक दासी ने धीमे स्वर में कुछ कहा। कुसुम ने उत्तर दिया—अगर तुम वहां जाना चाहती हो तो जाओ, मुझे कुछ ज़रूरत नहीं है। दासियाँ भी चली गईं। इस समय बँगले के बरामदे में अलीहसन, और भीतर कुसुम को छोड़ कर वहाँ कोई न था। किवाड़ के पास

आकर कुसुम ने कहा—पन्द्रह मिनट में आना। अलीहसन का हृदय उछलने लगा।

पन्द्रह मिनट के बाद अलीहसन भीतर गया। कुसुम के दरवाज़े के सामने वह ज्यों पहुँचा त्यों पत्थर की मूर्ति की तरह चित्र-लिखा सा रह गया। यह क्या, छोटी अम्मा ने यह कैसा रूप बनाया है! साड़ी की जगह एक मैली कुचैली फटी धोती है, हाथ में सोने के कङ्कन की जगह गमारिनों की सी चूड़ियां हैं, और एक दिन की बीमारी में चेहरा इतना उतर गया है जैसे महीनों की बीमार हों। फिर अलीहसन ने पूछा—छोटी अम्मा, आज आपको यह क्या हो गया है? कुसुम की आंखों से आंसू की नदी उमड़ पड़ी, लाख रोकने पर भी वह अपने को न रोक सकी,। मेरे बेटा, मेरे लाल, मेरे राजाराम! कहती हुई उसने उसे गोद में ले लिया और लोकलाज की बिलकुल परवा न कर के जितनी ज़ोर से वह रो सकी उतनी ज़ोर से रोने लगी। अलीहसन चकित होकर बोला—छोटी अम्मा, आज पागल हो गई हो क्या, हाय, आपको यह कैसा रोग हो गया है, मुझे छोड़िये, जाऊँ बाबू जी को इत्तिला दूँ। कुसुम ने अपने आंसुओं को पोंछते हुए कहा—बेटा राजाराम मैं पागल नहीं हूँ, मैं ही तेरी मां हूँ, जिस दिन मैं तुझसे अलग हुई, उसी दिन की यह मेरी पोशाक है। अलीहसन ने बात काट कर कहा—नहीं, छोटी अम्मा, आज आप का चित्त ठिकाने

नहीं है, कहां आप ब्राह्मण, और कहां मैं मुसलमान ! मुझे बाबू साहब के पास ख़बर ले जाने दो। कुसुम ने फिर कहा—बेटा, मैं पागल नहीं हूँ, तू जो चाहे सो पूछ कर मेरी बुद्धि की परीक्षा कर ले। अलीहसन ने कहा—अच्छा बतलाओ, बाबू साहब के कै लड़के हैं ? कुसुम ने कहा—एक भी नहीं। अली-हसन ने फिर पूछा—आप किस जाति में हैं ? कुसुम ने कहा, ब्राह्मण। अलीहसन बोला—पंडित जी आप के विवाहित पति हैं या नहीं ? कुसुम ने उत्तर दिया, 'हाँ'। ये सब उत्तर ठीक थे, और यदि इनके आधार पर ही कुसुम की चित्त-स्थिति का निर्णय किया जाय तो यह किसी तरह नहीं कहा जा सकता कि वह पागल है, परन्तु इन की सच्चाई ही तो उसे और भी असमंजस में डाल रही थी। बेचारा अलीहसन यह नहीं समझ सकता था कि वह कुसुम का लड़का कैसे हो सकता था। उसे निश्चय हो गया कि छोटी अम्मा पागल हो गई हैं और कुछ भयभीत सा होकर कुसुम से जी छुड़ाकर वह कमरे के बाहर चला गया। इतने में पण्डित जी आ गये और उसे अत्यन्त घबराहट की हालत में घर के भीतर से निकलते हुए उन्होंने देख लिया। पण्डित जी को कुछ कहने का अवसर दिये बिना ही वह बोल उठा—हुजूर छोटी अम्मा पागल हो गई हैं। पण्डित जी घबराये हुए घर के भीतर गये, देखा कि कुसुम मैले कपड़े पहिने हुए ज़मीन पर बैठी है। सिर पर हाथ रख

कर पूछा—क्यों तबियत कैसी है ? कुसुम कुछ न बोली। कई बार पूछा—वह ज्यों की त्यों चुपचाप बैठी ही रही। पण्डित जी ने अलीहसन को बुलवा कर कहा—जाओ डाक्टर को बुला लाओ। आध घण्टे में डाक्टर साहब आ गये, यन्त्रों द्वारा परीक्षा करके बोले—कुछ नहीं, किसी कारण से हृदय में उत्तेजना हो गई है, रात भर में चित्त ठिकाने हो जायगा, कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं है। सवेरे तक सचमुच कुसुम चंगी हो गई, उसने फिर अपने अच्छे कपड़े पहिन लिये, और, यद्यपि वह कुछ दुबली जान पड़ती थी, तथापि उसके चेहरे पर एक अपूर्व सौन्दर्य्य दिखलाई पड़ रहा था।

[३१]

गत दस वर्षों में रामकिशोर की पूरी कायापलट हो चुकी है। जो कुछ रुपया उसके माँ बाप के मरने पर उसे मिला था तथा और जो कुछ जायदाद उसके पास थी, उसे वह धीरे धीरे रंडियों के हवाले करके भिखारी बन गया है। रामकिशोर और त्रिवेदीनारायण में लड़कपन में बहुत हेल-मेल था ही, एक दिन इसी प्रेम को आधार बना कर रामकिशोर अपनी धनहीनता

की कथा सुनाने पंडित जी के यहाँ आया। इतने दिनों के बाद भेंट होने तथा मित्र की करुणा-जनक विपत्ति-गाथा सुनने पर पंडित जी की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने, उसे अपने यहाँ नौकर रख लिया। कुसुम को यह बात पीछे मालूम हुई। उसने उनसे कहा कि एक रामकिशोर को मैं जानती हूँ, यदि वही आदमी है तो तुमने सख्त गलती की। एक दिन यह जानने के लिए कि आदमी वही है या दूसरा, कुसुम ने रामकिशोर को खिड़की में से देखा। रामकिशोर ने भी कुसुम को देख लिया, देख कर ताड़ गया कि देखनेवाली कुसुम उर्फ़ महारानी है। कुसुम भी जान गई कि वही रामकिशोर है, इस बात से रामकिशोर को ख़ुशी और अचम्भा, साथ ही कुसुम को अत्यन्त अधिक आन्तरिक पीड़ा हुई।

एक दिन कुसुम कमरा बन्द करके चारपाई पर लेटी हुई थी। तरह तरह की अनेक भावनाएँ उसके हृदय को सशंक, भयभीत, और पीड़ित कर रही थीं। इतने में दर्वाज़ा खटखटाया गया, उसने उठ कर खोला, नौकरानी ने एक मनोहर लिफ़ाफ़े में बन्द चिट्ठी उसके हाथों में दी। वह खोल कर पढ़ने लगी, उस में लिखा था:—

प्रिय महारानी उर्फ़ कुसुम,

मुझे पूरी आशा है कि तुम मुझे जान गई हो, मैं तुम्हारा पुराना प्रेम-प्रार्थी रामकिशोर हूँ, तुम्हारी तलाश में कहाँ

कहाँ मारा मारा फिरा हूँ, अब ईश्वर ने कृपा की है, तुम मिल गई हो। अब मेरे ऊपर दया करो।

तुम्हारा,

रामकिशोर

पत्र पढ़ कर कुसुम की आँखों के आगे अँधेरा छा गया। घबराहट में डूबी हुई वह इधर से उधर करवटें बदलती रही, कुछ निश्चय न कर सकी कि अब क्या किया जाय। उस दिन उसने कुछ खाया पिया भी नहीं।

[३२]

रामकिशोर पंडित जी को आर्य्यसमाज की बातें सुनाता था और अम्मा को सनातन धर्म्म की। देश-भक्ति, जाति सेवा, ब्रह्मचर्य आदि के सम्बन्ध में अवसर पड़ने पर पंडित जी के मन-सुहाता ऐसा व्याख्यान वह दे दिया करता था कि वे भी दंग हो जाते थे। उनके प्रति प्रेम और भक्ति-भाव का ऐसा आडम्बर उसने रच रक्खा था कि उसके मुख से 'बड़े भैया' का सम्बोधन सुन कर उनके हृदय में गुदगुदी सी हो जाती थी।

अम्मा को 'अम्मा' न कह कर वह 'मैया' कहता था। इस सरस नवीनता का अम्मा पर बड़ा प्रभाव पड़ता था और वे उसकी बातें सुनने के लिए अधिक प्रेम के साथ ठहर जाती थीं। वह उन्हें कभी प्रयाग का माहात्म्य सुनाता, कभी हरिद्वार की चर्चा करके सन्तुष्ट करता और कभी उनसे बद्रीनाथ की बड़ाई करता। बातचीत में स्वार्थ की ज़रा भी बू न आने पावे, इस बात का वह बड़ा ख़याल रखता था; अभी वह केवल क्षेत्र तैयार कर रहा था।

त्रिवेदी नारायण के पिता के साथ अपने पिता की मित्रता की अनेक मनोरञ्जक कहानियां सुना सुना कर रामकिशोर दिन प्रति दिन धीरे धीरे पंडित जी तथा अम्मा पर भी अपना प्रभाव बढ़ाता ही जाता था। धीरे धीरे ऐसी स्थिति आ गई कि यदि रामकिशोर के विरुद्ध कुछ कहने की इच्छा कुसुम करती भी तो उसे यह भय लगा रहता था कि कहीं उसकी बात का तुरन्त खंडन न कर दिया जाय, यही नहीं, कहीं उसकी ओर, उनके हृदय में कोई सन्देह न उत्पन्न हो जाय। एक बात और, हाल में नौकरों ने अम्मा से अलीहसन की बहुत शिकायतें की थीं। अम्मा धरम करम के मामले में बहुत सतर्क रहा करती थीं। नौकरों ने शिकायत की थी कि एक बार अलीहसन ने उनका पानी का घड़ा छू लिया, फिर उनकी चारपाई पर लेट गया, रामायण और हिन्दी गीता बिना हाथ साफ़ किये उठा ले गया।

इत्यादि, इत्यादि। कुछ दिनों से तो रोज़ उनके पास शिकायतें आया करती थीं। अम्मा अलीहसन के विरुद्ध सब बातों को बड़े ध्यान और बड़े प्रेम से सुना करती थीं, क्योंकि उनके आधार पर वे कुसुम के सम्बन्ध में एक अभियोग खड़ा करना चाहती थीं। अलीहसन के प्रति कुसुम की बढ़ती हुई कृपालुता अम्मा की आँखों में काँटे की तरह खटकती थी और उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया था कि कुछ न कुछ दाल में काला अवश्य है, उनके इस विश्वास का परिचय कुसुम अनेक रूपों में पा गई थी।

कुसुम विचार-वन में इधर से उधर भटक रही थी कि इतने ही में किसी ने दरवाज़ा खटखटाया, उसने तुरन्त उठ कर खोला, देखा तो पतिदेव थे। वे आकर सिरहाने की ओर बैठ गये, वह भी पैताने बैठ गई। पंडित जी ने कहा—तुम्हारी तबियत अब तो अच्छी है न? कुसुम बोली—अच्छी ही है, मेरी एक सखी आज कल कुछ कठिनाई में पड़ गई है, उसने मुझसे एक प्रश्न का उत्तर पूछा है वही पड़ी पड़ी सोच रही थी। पंडित जी नें पूछा—क्या मैं भी सुन सकता हूँ? कुसुम ने कहा—हँसी में टालने का वादा न करो तो सुना सकती हूँ, लेकिन तुम तो मेरे पास अपने थके हुए दिमाग़ को बहलाने ही के लिए आया करते हो, भविष्य में कहीं घबरा कर मेरे पास आना न छोड़ दो। पंडित जी ने हँस कर कहा—

नहीं ऐसा न होगा, तुम सुनाओ। कुसुम बोली—मेरी सखी इस समय एक बहुत धनवान आदमी की स्त्री है, बाल्य-काल में पति की अनुपस्थिति में उससे कुछ असावधानी हो गई। उसका पति यह बात नहीं जानता, पति के प्रेम के कारण उसकी अन्तरात्मा उसे बहुत धिक्कारती है, अब वह पूछ रही है कि मैं क्या प्रायश्चित्त करूँ। पंडित जी ने पूछा, उसे सच्चा अनुताप है न? कुसुम ने उत्तर में कहा—हाँ, लेकिन उसमें इतना साहस नहीं है कि वह अपने पाप को स्वीकार कर ले, क्योंकि उसे भय है कि वह घर में से निकाल दी जायगी।

पंडित जी कुछ सोचने लगे, इस बीच में कुसुम ने अपनी पत्रावलि में से वह पत्र निकाल कर पति के हाथ में दे दिया, पंडित जी उसे देखने लगे, कुसुम भी उस पर आँख दौड़ाती रही। उसमें एक स्थल पर लिखा था—

सखी कुसुम! बड़ी भारी कठिनाई यह है कि एक राक्षस, जो मेरा सर्वस्व-नाश करने के लिए बहुत समय से मेरे पीछे पड़ा रहा है और जिसे मेरा सारा कच्चा चिट्ठा मालूम है, अब यह धमकी दे रहा है कि यदि तुम मेरी बात न मानोगी तो मैं तुम्हारा अपयश फैला दूँगा, इत्यादि।

पंडित जी इस समय बहुत विचार में डूब गये, अम्मा ने उनसे अलीहसन की बहुत शिकायतें की थीं, कई नौकरों ने भी उनसे उसके विरुद्ध अनेक बातें कही थीं, किसी ने तो

यहाँ तक कह दिया था कि कमरा बन्द करके मालकिन उससे घण्टों बातें करती रहती हैं। इन बातों से उनके चित्त में भी कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया था, जिस दिन घर वाले बिरादरी में चले गये थे उस दिन उन्होंने अलीहसन को घर में से आते हुए देखा था। किसी किसी दिन जब वे घूम कर आये तब उसे उन्होंने कुसुम के कमरे में पाया भी था, इन बातों से उनके हृदय में सन्देह अंकुरित हो गया था। उन्हें यह भी मालूम था कि कभी कभी सखी और सखा की आड़ लेकर लोग अपने ही दिल की बातें खोल दिया करते हैं। किन्तु, थोड़ी देर सोचने के बाद पण्डित जी ने कहा—अपनी सखी को लिख दो कि यदि तुम्हें अपने भूतकालीन पाप के लिए सच्चा अनुताप है तो वही अनुताप ही काफ़ी प्रायश्चित्त है।

यह कह कर पण्डित जी चारपाई पर से उठे और कुसुम की सरल बात तथा मीठी मुसकान में अपने समस्त सन्देहों को दफ़न करने की चेष्टा करते हुए अपने कमरे में चले गये। बाद को बहुत सोचने पर उनका विश्वास हो गया कि कुसुम निस्सन्ताना है, अलीहसन अनाथ है, इसीलिये वह उस पर विशेष अनुग्रह रखती है, और अम्मा ने धार्मिक कारणों से तथा नौकरों ने द्वेष के वश में होकर शिकायत की है। इधर बहुत दिनों से कुसुम ने पण्डित जी से दिल खोल कर बातें नहीं की थीं, पण्डित जी के सन्देह का एक कारण यह भी था।

आज उसने प्रेम-पूर्वक बातें कीं, थोड़ी देर बाद घर के काम से उन्हें कमरे में से एक बार बुलवा भी लिया। इस बार के बुलाने में विशेष सरसता थी, इसमें से यह ध्वनि निकलती थी कि इधर कई दिनों से अस्वस्थ और चिन्ता-युक्त होने के कारण ही मैंने अपने घर के काम की ओर और तुम्हारी ओर उदासीनता दिखलाई थी।

[पाप की पहेली

[३३]

शाम को जब पण्डित जी घूमने चले गये, राजाराम अपनी माँ के कमरे में रामायण लेकर गया। राजाराम ने कहा—अम्मा, कुछ लोग कहते हैं कि यहाँ आने के पहिले तुम सन्यासिनी हो गई थीं और मारी मारी फिरती थीं, क्या यह सच है? कुसुम ने प्यार से कहा—बेटा, इस विषय में तुम मुझसे कुछ न पूछा करो, बस तुम मेरा इतना विश्वास करो कि मैं ही तुम्हारी माँ हूँ, अधिक जानने से तुम्हें कोई लाभ न होगा।

राजाराम चुप हो रहा, प्रेम ने उसके प्रश्नों का अन्त कर दिया।

कुसुम ने थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद कहा—राजाराम, तू मुझे अपनी माँ मानता है न ? राजाराम ने कहा—अम्मा, क्या तुझे अभी इसमें भी सन्देह है ? कुसुम ने पूछा—क्या मेरी एक आज्ञा मानेगा ? राजाराम ने उत्तर दिया—यदि प्राण देकर भी कर सकूंगा तो करूँगा। कुसुम ने कहा—एक आदमी की हत्या करनी होगी। राजाराम ने चौंक कर पूछा—मुझसे मनुष्य की हत्या कराओगी माँ, क्या कह रही हो ? कुसुम ने गम्भीर भाव से उत्तर दिया—बेटा, जो प्रश्न तुम मुझसे पूछ रहे हो, उसका उत्तर मुझे मेरा हृदय दे चुका है, तुम्हारी ही तरह मेरी अन्तरात्मा भी झिझकी थी, किन्तु मैंने सब का पूरा समाधान कर दिया है, यदि तुम कर सको तो कहो। थोड़ी देर तक सोचने विचारने के बाद राजाराम ने कहा—उस आदमी का नाम क्या है ? कुसुम ने धीरे से कहा वही जो यहाँ हाल ही में नौकर रक्खा गया है। राजाराम ने पूछा—कब ? कुसुम ने कहा—मैं बतला दूँगी। थोड़ी देर ठहर कर वह फिर बोली—बेटा, हमारे तुम्हारे रास्ते में यही आदमी काँटा बन रहा है, यदि इसे तुम नष्ट कर सको तो भविष्य में हम लोगों के लिए कोई कष्ट न रह जायगा, यदि नहीं तो बस समझ लो कि मेरी और मेरे साथ तुम्हारी कुशल

नहीं। चुपचाप बैठे रहने में भी आज नहीं तो कल सर्वनाश अवश्य है। तो क्यों न एक बार पुरुषार्थ करके आगामी विपत्तियों से बचने का प्रयत्न किया जाय, यदि सफल हुए तो सुख से रहेंगे, यदि विफल हुए तो अधिक से अधिक वही होगा जो कुछ न करने पर भी अवश्यम्भावी है। नौकरानी कुछ काम से कुसुम के पास आ रही थी, यह जानकर कि अलीहसन भीतर है, किवाड़ के पास खड़ी होकर कान लगा कर सुनने लगी। उसे समझ पड़ा कि हत्या के सम्बन्ध में कुछ बात चीत हो रही है। उधर से एक दासी और आ रही थी मुसकरा कर उसके बदन में चुटकी काटते हुए उसने धीरे से कान में कहा—इस वक्त दोनों की खूब घुँट रही है, तक़दीर हो तो ऐसी हो। दूसरी दासी मुसकराती हुई चली गई।

[२२]

कुसुम की उपेक्षा से क्रुद्ध होकर रामकिशोर ने उसका सर्वनाश करने का निश्चय कर लिया और पण्डित जी से उसके सम्बन्ध की बातें करने का मौक़ा ढूँढ़ना शुरू किया। एक दिन अलीहसन को अपने काम की जगह पर मौजूद न पाकर उन्होंने उसे कुसुम के पास गप लड़ाते हुए देखा तो पण्डित जी ने कुसुम पर बहुत चिढ़ के कहा—तुम नौकरों से काम न लेकर उन्हें छुट्टी देना चाहती हो, इस तरह काम कैसे

चल सकता है ? रामकिशोर को इस बात की ख़बर लग गई। उसने वही दिन अपने काम को सिद्ध करने के लिए अच्छा समझा।

संध्या समय पण्डित जी रामकिशोर को साथ लेकर प्रायः पैदल घूमने जाया करते थे। इस समय वे रामकिशोर के साथ बहुत दिल खोल कर बातें किया करते थे और इसी समय रामकिशोर उन्हें घर के कारबार आदि के बारे में ऐसी बातें बताता था जो पण्डित जी पर यथेष्ट प्रभाव डालती थीं। आज घूम कर लौटने लगे तो सूर्य डूब गये थे, आकाश में मनोहर लालिमा देखकर पण्डित जी बहुत ख़ुश हुए और बोले—क्यों जी ! इस लालिमा की उपमा तुम दे सकते हो ?

रामकिशोर ने कहा—वाह ! यह भी कोई कठिन बात है ? प्रेमियों का हृदय भी तो ऐसे ही दिव्य प्रकाश से पूर्ण होता है।

पं०—प्रेमियों से तुम्हारा क्या मतलब ? पति-पत्नी या और कोई ?

रा०—पंडित जी पति-पत्नी की भी गणना कहीं प्रेमियों में होती है ? मैंने तो ऐसे पति-पत्नी देखे ही नहीं जिनमें सच्चा प्रेम हो।

रामकिशोर ने यह बात बहुत ज़ोर देकर कही, क्योंकि उसे आगे कुसुम ही के विश्वासघात की चर्चा छेड़नी थी।

पंडित जी रामकिशोर की बातों से कुछ विभ्रम होकर बोले—क्या तुम्हें हज़ार में एक भी दम्पति ऐसा नहीं मिला जिसका प्रेम सच्चा हो।

हज़ार क्या, लाख में भी एक दम्पति मिलता तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझता। मैंने ज़िन्दगी भर किया क्या है ? जब निराश हो गया तब घृणा के साथ इस अनुसन्धान को छोड़ दिया—रामकिशोर ने कहा।

अच्छा मेरे दम्पति-जीवन के सम्बन्ध में तुम्हारा क्या विचार है—आशंका-मिश्रित कौतूहल-व्यञ्जक मुसकराहट के साथ पंडित जी ने पूछा।

रामकिशोर ने कहा—हटाइये भी, इन बातों में क्या रक्खा है।

पंडित जी स्वयं को बहुत सुखी और भाग्यवान पतियों में समझ रहे थे। उन्हें आशा थी कि रामकिशोर उनके गार्हस्थ जीवन में कोई त्रुटि निकाल न सकेगा। किन्तु, जब उसने इस चर्चा को टालना चाहा तब उनकी उत्कंठा और भी बढ़ चली। उन्होंने रामकिशोर से अपना मत प्रकट करने का आग्रह किया।

रामकिशोर ने अनुकूल अवसर आता देख कर कहा—जब आप आग्रह कर रहे हैं तो मुझे अपनी इच्छा के विरुद्ध कुछ

चाहता हूँ। वह यह कि जब एक मित्र दूसरे मित्र से अपने सम्बन्ध में खरी समालोचना का अवसर देता है तब जिस अभागे के ऊपर यह भार पड़ता है वह बहुत ही असुविधापूर्ण स्थिति में पड़ जाता है। मेरी स्थिति भी ऐसी ही है। यदि आप मुझे तथ्य बात के कहने की पूरी स्वतंत्रता दें तथा मैं जिन प्रश्नों को पूछूँ उनका ठीक ठीक उत्तर दें तो जो बातें मेरे समझ में आई हैं तथा मैं जो कुछ जानता हूँ वह सब आप से निवेदन करूँगा।

पंडित जी इन बातों को सुनने के लिए बिलकुल तैयार न थे। कोई ऐसी बात, जिसकी जानकारी उन्हें बिलकुल नहीं थी, उनके सामने पेश होने वाली थी—इसलिए सब तरह से रामकिशोर का समाधान करके वे उसके कथन को सुनने के लिए एकाग्र-चित्त होकर उसी के मुख की ओर निहारने लगे।

रामकिशोर ने कहा—सब से पहले मैं यह जानना चाहता हूं कि आपने अपनी गृहदेवी जी का पाणिग्रहण करने के कितने दिनों बाद उनके साथ रहना शुरू किया ?

पं० जी—क्या तुम्हें मालूम नहीं है ? पिता जी के व्यवहार से ऊब कर मैं और मेरे साथ तुम विवाह के बाद ही तो भगे थे। तब का निकला हुआ मैं कहाँ कहाँ घूमता हुआ मुद्दत के बाद अपनी जन्म-भूमि में लौटा तो मालूम हुआ कि माँ मेरे वियोग में मर गई, स्त्री भी स्वर्ग-वासिनी हो गई, पिता

जी सन्यासी हो गये और ससुराल में भी कोई न बचा। दो-वर्ष बाद मैं दूसरा विवाह करने ही वाला था कि मेरी पूर्व पत्नी मिल गई और मैंने उसे ग्रहण कर लिया।

रा०—आपने कैसे पहचाना कि यह मेरी स्त्री है ?

पं० जी—नाम से तथा मायके और ससुराल के समाचारों के वर्णन से।

रा०—आपकी गृहदेवी के पिता उनसे पहले मरे या बाद को ?

पं०—पहले।

रा०—और माँ ?

पं०—वह भी पहले।

रा०—आपके पिता जी के पास किसने यह ख़बर भेजी कि बहू भी मर गई ?

पं० जी—उसके दूर के द्रोही कुटुम्बियों ने, जिन्हें उसके हित या अहित की कोई चिन्ता न थी।

रा०—आपकी गृहदेवी ने इसका कोई विरोध नहीं किया ?

पं० जी—नहीं, क्योंकि वे लोग क्या कर रहे हैं, इसे वह जानती ही नहीं थी।

रा०—देवी जी ने आगे चलकर क्या किया ?

पं० जी—कुछ समय के बाद उसे मालूम हुआ कि उसके शत्रुओं ने उसके साथ बहुत बड़ा अत्याचार किया है और वह

स्वयं ससुराल की खोज में चली। किन्तु वहाँ पहुँचने पर उसे घर में ताला लगा मिला। मायके और ससुराल दोनों ओर की सहायता से वञ्चित होकर उसने प्रयाग में अरइल के पास एक झोपड़ा बनाकर भगवान का नाम लेते हुए जीवन बिताने का निश्चय किया। एक बार फिर मैं अपनी ससुराल में गया और बनारस जाते समय प्रयाग में स्नान करने के लिये एक रोज़ ठहर गया। वह दिन शायद तुम्हें याद भी हो, क्योंकि मुद्दत के बाद हम तुम गंगा जी के मैदान में मिले थे। और वहीं हमारी तुम्हारा बहुत सी बातें हुई थीं।

हाँ, हाँ मुझे खूब याद है, आप कहे चलिए—रामकिशोर ने उत्कण्ठा का भाव प्रकट करते हुए कहा।

उसी दिन की संध्या को बोटिंग का आनन्द लूटने के लिए मैं त्रिवेणी की ओर गया। गर्मियों की चाँदनी रात का घूँघट खुल पड़ने पर सारा संसार विचित्र सरलता-पूर्ण दिखाई पड़ने लगा था। ऐसा अच्छा जान पड़ने लगा कि त्रिवेणी के बहुत आगे तक नाव लेता चला गया। वहीं रोने का शब्द कानों में आया। वहाँ और कोई मकान पास न देख कर मैं एक झोपड़ी में गया। झोपड़े के भीतर साधारण सामान थे, परन्तु सफ़ाई इतनी अधिक थी कि मुझे आश्चर्य हुआ, किन्तु जब रोनेवाली के रूप को देखा तब तो दिल हाथ से जाता रहा। ऐसा लावण्य मैंने

२८-३० वर्ष की किसी स्त्री में नहीं देखा था। बातों बातों में मुझे मालूम हुआ कि मेरी विवाहिता पत्नी यही है। उसकी किसी भी बात पर उस समय विश्वास न करना असम्भव था।

रा०—यह तो आपने अपनी गृहदेवी के मुख से सुनी हुई बातें कहीं, अब मैं आप को वे बातें बताता हूँ जिन्हें मैं जानता हूँ, लेकिन संकोचवश आप से कभी कह न सका।

पंडित जी गम्भीर एकाग्रता के साथ रामकिशोर की ओर देखने लगे।

रामकिशोर ने कहा—पंडित जी मैंने देवी जी को प्रयाग के त्रिवेणी-तट पर एक दूसरे ही रूप में देखा है। उस समय उनकी गोद में चार वर्ष का लड़का भी था। उस लड़के को लिये लिये वे 'महारानी' का नाम धारण करके भीख माँगती और इसी से अपना पेट पालती थीं। एकाएक वे वहाँ से ग़ायब हो गईं और उसके बाद बहुत दिनों तक मुझे उनके दर्शन नहीं हुए। दर्शन तब हुए जब अनेक वर्षों के अनन्तर आप से सहायता माँगी और आपने उदारतापूर्वक मुझे अपनी सेवा में बुला लिया। यदि आप को मेरी बातों का विश्वास न हो तो प्रयाग में चलिए और वहाँ त्रिवेणी के पंडों से मैं जो कुछ कह रहा हूँ उसकी सत्यता की जाँच कर लीजिए। आज कल जो दशा है उसको तो आप एक साधारण संकेत से समझ सकते हैं।

पं० जी—वह क्या ?

राम०—यही, अलीहसन का बहू जी पर जैसा प्रभाव है वह क्या सहन करने योग्य बात है ? आप तो देवता पुरुष हैं।

रामकिशोर की इन बातों को सुनकर पंडित जी पर जो असर पड़ा वह उनके निस्तेज मुख से भलीभाँति प्रकट हो रहा था। उनके मुख से उत्तर में एक शब्द भी न निकला। वे ऐसे मौन हो गए जैसे उनकी बोलने की शक्ति ही मारी गई हो।

संध्या हो गई थी। दोनों आदमी शीघ्र घर पहुँचने के लिए तेजी से क़दम डालने लगे। रास्ते भर पंडित जी और राम-किशोर में से कोई एक शब्द भी नहीं बोला।

[३४]

एक ओर तो रामकिशोर ने पंडित जी के कान भर दिये, दूसरी ओर उसने यह कोशिश की कि अलीहसन वहाँ से रफ़ू-चक्कर कर दिया जाय जिससे पंडित जी की समझ में यह अच्छी तरह आ जाय कि दाल में कुछ काला अवश्य है, नहीं तो यह लड़का भगा क्यों? रामकिशोर का यह नित्य का नियम था कि जितनी देर पंडित जी से बातें करता उतने से कहीं अधिक देर तक नौकरों चाकरों से गपशप लड़ाता। ऐसा

करने में बुद्धिमानी की बात यह थी कि अगर नौकरों-चाकरों को अपने अनुकूल बातें समझा बुझा कर तैयार रखेंगे तो उस समय उनसे बहुत बड़ा काम निकलेगा जब पंडित जी उनसे कुछ जानना चाहेंगे, विशेष कर, उसका ख़याल था कि जब येन केन प्रकारेण अलीहसन को भगा चुकेंगे तब उसके सम्बन्ध में वे लोग जो बातें फैलायेंगे उनसे इस षड्यन्त्र में बहुत अधिक सहायता मिलेगी।

नौकरों के जमादार का नाम था श्यामदास। वह दोपहर को काम से फ़ुरसत पाने पर अपनी कोठरी में भोजन बना रहा था। उसी समय रामकिशोर ने उसके कमरे में पहुँच कर कुछ ऊँची आवाज़ में कहा—अरे अलीहसन के बारे में कुछ सुना है ?

बुझती हुई आग को मुँह से फूँक कर आश्चर्य और उत्कण्ठा का भाव प्रकट करते हुए श्यामदास ने कहा—का है बाबू! हम तो कुछ नाहीं सुना। खैरियत तो है ?

रामकिशोर ने कहा—ख़ैरियत क्या होगी ? पीटा जायगा साला।

श्या०—मालिक तक खबर पहुँचाइ दियो का बाबू ? बहुत अच्छा भवा, ई ससुर के मारे हमार लोगन की नाक में दम होइ गवा रहा। लेकिन एक बात देख्यो, मालकिन के कुछ

जरब न आवै पावइ। काहे से कि मालकिन हमार लोगन के पालन छोड़ि कौनो नुकसान नाहीं कीन्ह ।

रा०—भाई पंडित जी को सब बात मालूम हो गई हैं, अलीहसन पर करारी मार पड़ेगी, यह तो तय है, रहा यह कि मालकिन को क्या होगा सो मैं नहीं बता सकता। भाई श्यामदास, मेरी तो राय यह है कि अलीहसन बेचारा भी क्यों पिटे, मालिक का हाथ, क्रोध की हालत, न जाने अङ्ग भङ्ग कर डालें तो वह भी बदनामी की बात। ऐसा करना चाहिए कि बात आपस ही में रह जाय। बाहर वाले सिर्फ इतना जानें कि किसी वजह से नौकरी छोड़ कर चला गया। बड़े आदमी की इज्ज़त की बात है।

श्या०—आप ठीक कह रहे हो बाबू जी. साले को ऐसा डराय दें कि आपै भागि जाय, साँप मरै और लाठी न टूटे। बहुत अच्छा, हम ई काम करि डरिहैं, आप निसाखातिर रहैं।

इस बातचीत के दूसरे ही दिन अलीहसन बँगले से लापता हो गया। उसके चले जाने से बँगले में सभी प्रसन्न थे, रंज था तो केवल दो स्त्रियों को। वे थीं कुसुम और कमला। कुसुम समझ गई कि रामकिशोर उसके विरुद्ध एक भयंकर षड्यन्त्र की रचना कर रहा है और राजाराम को भगा देना उस षड्यन्त्र का एक अंग है। उसे यह भी मालूम था कि आग की लपक अब उसके पास तक पहुँचने वाली है।

परिस्थिति से विवश हो जाने पर कुसुम के हृदय की संपूर्ण वेदना उस प्रचण्ड क्रोध के रूप में परिणत हो गई जो मनुष्य को बावला कर देता है और जो अपने सामने केवल सर्वनाश ही का दृश्य देखना चाहता है। इस कारण अपनी कमीज़ के भीतरी पाकेट में एक बड़ा छुरा रखने के बाद एक भीषण संकल्प करके वह इस संसार को चलाने वाली महाशक्ति से धैर्य और दृढ़ता का वरदान पाने के लिए बारम्बार प्रणाम करने लगी।

रात्रि के दस बजे पंडित जी कुसुम के कमरे में गये। चारपाई पर बैठते ही बोले, चपरासी तो भाग गया, घर की कोई चीज़ तो नहीं ले गया?

कु०—भागने के वक्त न वह मेरे पास आया था और न मैं ने ही उसे देख पाया था। घर की चीज़ों में कोई चीज़ ग़ायब भी नहीं देखती हूँ।

पंडित जी ने उग्र रूप धारण करके पूछा—तुम्हें उसके जाने से कुछ रंज है या नहीं?

कुसुम ने उत्तर दिया—रंज तो मुझे बहुत है, उसके लिए भी, अपने लिए भी। उसके सम्बन्ध में आप के मित्र ने जैसी उलटी-सीधी बात फैलायी है और उसके साथ साथ मुझे भी घर घसीट कर जसा अन्याय किया है वह कुछ खुश होने के लिए नहीं है। इतने पर भी यदि मुझे रंज न हो तो मैं मनुष्य नहीं समझी जाऊँगी।

पं०—मेरे मित्र ही क्यों, उससे कौन ख़ुश था। नौकरों चाकरों से ले कर अम्मा तक को उस के विरुद्ध ही देखा। केवल तुम उससे प्रसन्न थीं।

कुसुम ने दृढ़तापूर्ण स्वर में कहा—इसके लिए मुझे पछताना नहीं है।

पंडित जी ने पूछा—उसकी ओर तुम इतना क्यों झुकी थीं कुसुम, वह तुम्हें क्यों इतना प्रिय मालम होता था?

कु०—उस अनाथ बच्चे के प्रति मेरे हृदय में आप ही आप प्रेम की धारा उमड़ पड़ी थी। माँ का अपने बच्चे के लिए जैसा प्रेम होता है उस पर मेरा वैसा ही प्रेम था। इस प्रेम को और लोग बरदाश्त नहीं कर सकते थे, इसी से सब ने उस के विरुद्ध शिकायत की।

पं०—किसी और लड़के के साथ इतना अधिक प्रेम तो करते मैंने तुम्हें नहीं देखा कुसुम! इसी लड़के में ऐसी कौन सी ख़ास बात थी।

कुसुम की आँखें भर आयीं। वह कुछ उत्तर न दे सकी। पंडित जी ने समझा कि कुसुम अपराधिनी है।

पंडित जी ने फिर पूछा—क्यों कुसुम! जब मैंने तुम्हारा परिचय पाकर तुम्हें ग्रहण कर लिया था तब तुमने मुझसे यह बात क्यों छिपाई थी कि तुम किसी अन्य के संसर्ग से उत्पन्न एक बालक की माँ हो चुकी हो और 'महारानी कहारिन' का नाम धारण

करके कई वर्ष प्रयाग में त्रिवेणी के तट पर सभी प्रकार के पुरुषों का मनोरञ्जन कर चुकी हो। ठीक ठीक उत्तर दो कुसुम, क्योंकि तुम्हारे इसी उत्तर पर तुम्हारा भविष्य जीवन निर्भर है।

कुसुम की आँखों से आँसू की धारा उमड़ चली। उसने समझ लिया कि अब कुशल नहीं है। नीच रामकिशोर ने न केवल सच्ची बातें इन्हें बतला दी हैं बल्कि उन पर नमक मिर्च भी लगाया है। सत्य के विकराल स्वरूप को देखकर न तो उसमें इनकार करने की हिम्मत रही और न स्वीकार ही करने का बल उसमें सहसा आ सका। परन्तु, यदि नीचे झुके हुए शिर, मौन जिह्वा, तथा शून्य में निरुद्देश्य भाव से टँगी हुई आँखों का कोई अर्थ हो सकता है तो वह यही था कि हाँ, मैंने अपराध किया है।

पण्डित जी ने गरज कर कहा—क्यों रे पापिनी! बोलती क्यों नहीं? मुझे यह नहीं मालूम था कि तू मुझे ठग रही है, नहीं तो उसी समय मैं तेरा काम तमाम कर देता। यदि तुझमें साहस हो तो इनकार कर दे, किन्तु मैं तुझे प्रयाग में ले चल कर एक एक पाण्डे को दिखाऊँगा और तब जो कुछ तू मुझे यहाँ नहीं बता रही है उसे त्रिवेणी-तट की पवित्र बालुका का एक एक कण मौन किन्तु घृणा के स्पन्दन से प्रभावित स्वर में घोषित करेगा, तब अपराधिनी तू कहाँ जाकर अपना मुंह छिपावेगी। चाण्डालिनी! कलङ्किनी!!

पण्डित जी के क्रोध की मात्रा बढ़ती देखकर कुसुम थर-थर काँपने लगी और इस भय से कि कहीं वे मार न बैठें उसने चुप रहना ही उचित समझा, क्योंकि एक तो यह प्रायः सिद्ध ही था कि वह अपराधिनी है, दूसरे यदि वह अपराधिनी न भी होती तो यह अवसर बहस करके शंका-समाधान करने का नहीं था।

अपने प्रश्न का उत्तर न पाने पर त्रिवेदीनारायण झल्ला उठे और थोड़ी ही दूर पर सामने तिपाई पर बैठी हुई कुसुम को इतने ज़ोर से उन्होंने ढकेला कि वह बेचारी सिर के बल ज़मीन पर गिरी और सिर के रक्त की धारा से फ़र्श रंग उठी। जितना जल्द हो सका कुसुम उठी और दरवाज़े के पास दीवाल के सहारे खड़ी हो गई। इस समय उसकी दशा उस हरिणी की सी हो रही थी जो किसी भूखे और झुंझलाये हुये बाघ के सामने पड़ जाती है। जिन त्रिवेदीनारायण पर कुसुम शासन किया करती थी, जो उसके इशारों पर नाचते थे उन्हीं के उत्तेजित मुख-मण्डल की ओर दृष्टि डालने की ताब आज कुसुम में नहीं थी। नैतिक पतन मनुष्य को कितना दुर्बल बना देता है।

त्रिवेदीनारायण धीरे धीरे कुछ शान्त हुए। किन्तु, शान्त होने पर भी वे विचार मग्न ही बने रहे। कुसुम व्यभिचारिणी है, इसमें तो उन्हें अब तनिक भी सन्देह नहीं रहा। परन्तु

अब करना क्या चाहिये, यही विचारणीय था। परिडत जी इस बात से सन्तुष्ट हो सकते थे कि कुसुम अपने पूर्व पाप को साफ़ साफ़ स्वीकार कर ले तथा भविष्य में अपने जीवन को सुधारने का वादा करे। किन्तु यहाँ तो जिस कठिनाई से वे अधिक खीझ उठे थे वह थी कुसुम का मौन व्रत धारण। उनकी समझ में इसका अर्थ यह था कि वह जैसी है वैसी ही बनी रहेगी। वे फिर बोले—कुसुम ! इस तरह तुम मेरे साथ नहीं रह सकतीं। मैं तुम्हें घर में रख कर मुँह में कालिख नहीं लगाऊँगा। यदि तुम व्यभिचारिणी हो और वही बनी रहना चाहती हो तो मेरे मकान से शान्तिपूर्वक निकल जाओ। इसी में तुम्हारी कुशल है।

किन्तु, कुसुम की तो ज़बान ही पर जैसे ताला लग गया था। न उससे 'हाँ' करते बनता था और न 'ना' त्रिवेदीनारायण को उसके केवल सिसिक सिसिक कर रोने की आवाज़ सुनाई दी। इस क्रोध की अवस्था में भी वे यह अनुभव करते थे कि स्त्री को घर से निकाल कर बाहर कर देने में अपनी ही बदनामी है, फिर भी यह दिखाने के लिए कि वे किस सीमा तक जा सकते हैं वे उठे और दरवाज़ा खोलकर उन्होंने कुसुम को कमरे के बाहर निकाल दिया और भीतर से साँकल लगा ली।

मकान के बाहर निकाल दिये जाने पर कुसुम ने रोना तो

एक दम से बन्द कर दिया। इस दुर्दशा से उसने मौत का आ जाना ही अच्छा समझा। पति ने त्याग दिया, लड़के को समाज के सामने वह अपना लड़का नहीं कह सकती, अबोध यौवनकाल का एक अपराध तक्षक की तरह उसे डसने को सदा तैयार है—यह सब सोचकर उसने सूर्योदय होने के पहले ही अपने जीवन की इतिश्री कर देने का निश्चय किया। परन्तु रामकिशोर, रामकिशोर भी तो न जीता रह जाय। यदि मेरा सर्वनाश करने वाला यह निशाचर अपनी विजय पर गर्व से उन्मत्त होने के लिए रह ही जायगा तो मरने पर भी मेरी आत्मा को सन्तोष न होगा। इसलिए पहले वह नरक की यातना सहने के लिए प्रस्थान करे, उसके बाद मैं भी अपने अपराधों का दण्ड भुगतने के लिए रवाना हो जाऊँ। उसका हाथ उस छुरे पर गया जिसके भरोसे उसने यह कार्य करने का निश्चय किया था। सारा अपमान, सारा क्रोध, सारा परिताप, सारी वेदना इस समय केवल इसी एक निश्चय को कार्य-रूप में परिणत करने के प्रबल संकल्प में विलीन हो गया और कल तक की सुशील कुलवधू कुसुम आज एक सफल हत्याकारिणी होने का उद्योग करने लगी।

भंडाफोड़

[३५]

बेरा होते ही रामकिशोर की हत्याका समाचार सारे बनारस शहर में बिजली की सनसनी की तरह फैल गया। पण्डित त्रिवेदीनारायण का बनारस में काफ़ी नाम था। और जब हत्याकारिणी उनकी स्त्री हो और हत्या का स्थल उनका घर, तब समूह की दिलचस्पी का कारण पूछने की

ज़रूरत ही नहीं थी । कुसुम भी बनारस के सार्वजनिक जीवन में बिलकुल अज्ञात नहीं थी ; उसकी सुशीलता, उसका पति-प्रेम आदि शहर भर में प्रसिद्ध था। इस कारण पंडित जी के घर पर पुलिस की भीड़ के साथ साथ जनता की भी बहुत बड़ी भीड़ लग गई।

हत्याकारिणी कुसुम का मुख-मण्डल इस समय शान्ति और गम्भीरता से परिपूर्ण था । पुलिस ने उससे बहुत चाहा कि हत्या के कारणों का भी पता उसी से लगा लें, लेकिन उसने उत्तर दिया कि शेष सब बातें मैं अदालत ही के सामने कहूँगी। कुसुम की वाणी में कुछ ओज आ गया था और उसका कथन आत्मा की गहराई में से निकल रहा था। इस-लिये दारोग़ा की भी यह हिम्मत नहीं हुई कि उसे अधिक परे-शान करें। पुलिस ने शहर के मैजिस्ट्रेट के सामने मामला पेश किया। उसने सेशन्स की अदालत में भेज दिया।

पहली पेशी के दिन नियमानुसार कार्यवाहियों के पश्चात् सरकारी वकील ने हत्या का अभियोग अदालत के सामने प्रस्तुत किया। साथ ही उसने यह बताया कि अभियुक्त स्वयं स्वीकार कर रही है कि उसने हत्या की। अतएव इस मामले में सरकार की ओर से कुछ अधिक कहे जाने की ज़रुरत ही नहीं है।

यद्यपि पण्डित त्रिवेदीनारायण स्वयं अदालत में नहीं

आये थे, तथापि उनके कई वकील मित्रों ने यह अपना कर्तव्य समझा कि अभियुक्त की ओर से कुछ पैरवी कर दें। इन्हीं वकीलों में से एक ने कुसुम की ओर से अदालत से यह निवेदन किया कि हुजूर, अभियुक्त से कुछ और बातें भी पूछ लेनी चाहिएँ। उन्होंने कहा—हमारा निवेदन है कि अभियुक्त ने क्रोध आदि मनोविकारों के वेग से अपनी विवेक-बुद्धि सर्वथा खोकर यह कार्य किया। इस दशा में वह हत्या के अपराध के लिए निश्चित दंड की भागी नहीं हो सकती, और इसी कारण यह मामला इतनी जल्दी समाप्त नहीं किया जा सकता जितनी जल्दी हमारे दोस्त सरकारी वकील साहब चाहते हैं।

इसका उत्तर सरकारी वकील ने इस प्रकार दिया—

रामकिशोर पं० त्रिवेदीनारायण के यहाँ नौकर की हैसियत से रहता था। पंडित जी के तमाम घरेलू कामों की प्रबन्धक स्वयं अभियुक्त थी और उसमें रामकिशोर का कोई हाथ न था। रामकिशोर तो पंडित जी की जमींदारी के कारबार की देखरेख करता था। अतएव इन दोनों के अधिक सम्पर्क का कोई विशेष अवसर नहीं था। लेकिन, जैसा कि मैं आगे चल कर बताऊँगा, और गवाहों के बयान से अपने कथन को पुष्ट करूँगा, अभियुक्त का चरित्र अच्छा नहीं था, और सम्भव है कि जब रामकिशोर को क़ाबू में लाने की उसकी कोशिश बेकार हो गई तब क्रोधित होकर उसने यह काम किया हो।

यदि इस तरह के क्रोध की ओर हमारे दोस्त का इशारा हो तो मैं इसे मंज़ूर करने को तैयार हूँ। मैं थोड़े से गवाह ऐसे पेश करूँगा जो आपको अभियुक्त की बदचलनी के बारे में पूरा पूरा ब्योरा बता देंगे। इतनी कार्यवाही के बाद पहली पेशी समाप्त हो गई।

इसके बाद की पेशी में सरकारी वकील ने कुछ गवाह पेश किये जिन्होंने अलीहसन चपरासी के साथ अभियुक्त के विशेष पक्षपात की चर्चा की।

सेशन्स जज ने पुलिस के अभियोग और उसकी निर्दिष्ट धारा को स्वीकार कर लिया। फिर उन्होंने कुसुम से अपना बयान देने के लिए कहा। कुसुम ने इस प्रकार कहना शुरू किया—

सरकारी वकील साहब ने अभी जो यह कहा है कि मैं एक बदचलन औरत हूँ, सो यह बात सही है। मैं अब अपनी ज़िन्दगी से ऊब गई हूँ। और पाप ने मुझे इतना अधिक सुख नहीं दिया है कि अब अपने जीवन के अन्तिम समय में भी झूठ बोलूँ। मैं पापिनी अवश्य हूँ, लेकिन मैंने केवल एक बार पाप किया है और उसे भी अपने जीवन के नवयौवन काल में। मेरी एक सहचरी ने मेरी प्रवृत्तियों को ऐसा उभाड़ा कि मैं अपने क़ाबू में नहीं रह गई और अज्ञान में पड़ कर मैंने अवश्य ही एक बार पाप किया। परन्तु अलीहसन के साथ

मेरे पाप की कहानी गढ़ कर सरकारी वकील साहब ने स्वयं भी एक बहुत बड़ा पाप किया है, जिसका उत्तर उन्हें ईश्वर की अदालत में देना होगा। मैं भगवान को साक्षी देकर कहती हूँ कि अलीहसन मेरा पुत्र है, प्रेमी नहीं है और उसका पहले का नाम राजाराम है। जब राजाराम उत्पन्न हुआ तब मेरे पिता-माता ने अपने कुल की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए मुझे प्रयाग में लाकर छोड़ दिया। जिस दिन उन्होंने ऐसा किया उस दिन से लेकर चार वर्ष तक मैंने अपने पुत्र की रक्षा की, भीख माँग माँगकर अपना और उसका भी पेट पाला। लेकिन दैव-संयोग से राजाराम गंगा में डूब गया। मैंने उसे डूबा हुआ समझा, लेकिन किसी मुसलमान ने उसकी रक्षा कर ली और उसे पाल-पोस कर बड़ा किया। किन्तु उस मुसलमान में ममता नहीं थी, इसलिए, अलीहसन के रूप में मेरा राजाराम संयोग से मेरे ही यहां नौकरी की तलाश में आया और मैंने अपने पतिदेव से सिफ़ारिश करके उसे नौकरी दिला दी। वह मेरा पुत्र ही था, मैं उसके साथ पक्षपात क्यों न करती? यह पक्षपात अन्य नौकरों को अप्रिय लगता था, और इस कारण कि उन्हें कोई प्रत्यक्ष कारण दिखाई नहीं पड़ता था, वे तरह तरह की बातें सोचते और गढ़ते थे। परन्तु, ईश्वर जानता होगा कि उस एक पाप को छोड़ कर मैंने जीवन में दूसरी बार ऐसा काम नहीं किया।

अब रही यह बात कि रामकिशोर की हत्या मैंने क्यों की ? सरकारी वकील साहब मुझे बदचलन कहते हैं और मैं रामकिशोर को बदचलन कहती हूँ। रामकिशोर मेरे पीछे साल दो साल से नहीं पड़ा था बल्कि मुझे उस समय से तंग कर रहा था जब मैं त्रिवेणी तट पर भीख माँगकर गुज़ारा करती थी। उसने मुझे बहुत बहुत प्रलोभन दिये, लेकिन एक बार ही पाप करके मैं इतनी संतुष्ट हो गई थी कि दुबारा फिर उसी रास्ते पर पाँव रखने की हिम्मत नहीं होती थी। कुछ दिनों के बाद जब मेरा लड़का भी खो गया तब अरइल के पास एक जगह झोपड़ी डालकर मैं अपने जीवन के दिन काटने लगी। रामकिशोर को मेरा पता न लग सका, इसलिए बहुत दिनों तक उससे मेरा पिंड छूटा रहा। बाद को पति से मेरी भेंट हो गई और मैं बनारस आकर रहने लगी।

इसके आठ नौ या दस साल बाद एक दिन मेरे पतिदेव ने मुझसे पूछा—मेरा एक साथी मुसीबत मे पड़ गया है, कहो तो उसे बुला लूं, लगान वसूली के काम की निगरानी उसे सौंप दूँगा। मैं क्या जानती थी कि यही रामकिशोर फिर मेरे सिर पर सवार होने आ रहा है। मेरे घर आने पर इस बदमाश को ज्यों हो मेरा पता चला त्यों ही इसने मेरे पास धमकी की चिट्ठियाँ भेजनी शुरू कीं। उनमें वह यही लिखता था कि तुम मेरी इच्छा की पूर्ति करो नहीं तो मैं तुम्हारा भंडा-

फोड़ दूँगा। मैं भंडा फूटने से अवश्य डरती थी लेकिन नये पाप से उससे भी अधिक डरती थी। निदान, जब मैंने नहीं माना तब उसने मेरे पतिदेव को मेरे सन्तानवती आदि होने का हाल तथा अलीहसन के साथ मेरा अनुचित सम्बन्ध होने की बातें गढ़ कर बता दीं। साथ ही उसने राजाराम को डरा धमका कर भगा दिया। मेरे सतीत्व पर अनुचित आक्रमण का प्रयत्न, पति से शिकायत, समाज में बदनामी, बड़ी कठिनाई से अथवा यों कहिए कि ईश्वर के अनुग्रह से मिले हुए पुत्र का वियोग करा देना—ये सब बातें यदि हृदय में क्रोध नहीं उत्पन्न करेंगी तो फिर वे कौन सी बातें हैं जो कर सकती हैं? निदान मैंने अपने ही आप इस नर-पिशाच से बदला लेने का निश्चय किया।

पतिदेव का सन्देह इतना प्रबल हो गया कि वे आपे में न रहे। अन्त में उन्होंने मुझे ग्यारह बजे रात को घर से निकाल ही दिया। मैं इस तिरस्कार के कारण और भी अधिक क्रोध से उन्मत्त हो उठी और मैंने इस नराधम का अन्त करके अपने अपराध को स्वीकार लेने तथा इस प्रकार गत दस वर्षों से अन्तःकरण के भीतर मचे हुए तुमुल आन्दोलन को शान्त करने का निश्चय किया। मैंने अपनी जान पर खेल करके इस नर-पशु का वध किया है और मैं इसके लिये अधिक से अधिक दण्ड भोगने को तैयार हूँ।

कुसुम की इन स्वीकारोक्तियों को अदालत में उपस्थित

समस्त जनता ने मन्त्रमुग्ध की तरह सुना। यद्यपि अब कुसुम की अवस्था तैंतीस वर्ष के लगभग थी तथापि उसके चेहरे पर एक अद्भुत तेज और सुशीलता-जनित लावण्य था। यह लावण्य अपने जीवन की त्रुटियों और भूलों को निस्सङ्कोच होकर स्वीकार कर लेने से घटा नहीं था, बल्कि और भी बढ़ गया था। इस समय सम्पूर्ण उपस्थित जन-समूह अपने हृदय को टटोल कर मन ही मन सोच रहा था—क्या इस प्रकार की पापिनी यही एक है जो अभियुक्त होकर अदालत के सामने खड़ी है ? हममें से कितने हैं जिन्होंने कभी कोई पाप नहीं किया ? यदि बेचारी ने एक बार पाप का स्वाद चख कर अपने को उसी के हवाले कर दिया होता और यदि यह रामकिशोर के कहने के अनुसार काम करने लग गई होती तो भला क्यों यह ऐसी बिडम्बना सहती ? न इसे कोई पापिनी कहता, न पति घर से निकालता, और न अदालत के सामने अपने पाप की कहानी इसे स्वीकार करनी पड़ती। यह सच है कि सच्चे आदमी ही को तकलीफ़ें सहनी पड़ती हैं; झूठे और कपटी तो मौज से मज़े उड़ाते हैं और न क़ानून उनके रास्ते में कोई रुकावट डालता है, न समाज ही उनकी आलोचना करता है।

कुसुम के सम्बन्ध में तरह तरह की कनफुसकियों-द्वारा सहानुभूति पूर्ण टीका-टिप्पणियाँ सब लोग करने लगे जज

पर भी कुसुम के बयान का काफ़ी प्रभाव पड़ा। ज्यों ही वह कुछ कहने को हुआ त्यों ही अदालत में सन्नाटा सा छा गया। उसने कहा—यदि हम अभियुक्त के बयान के आधार पर चलें तो उस पर उस क़ानून का रोष बहुत संयत हो जाता है जिसके भीतर वह अपराधिनी सिद्ध की जा रही है। परन्तु उसके बयान की भी बहुत सी बातें ऐसी हैं, जिनका प्रमाण आवश्यक है, साथ ही, जिनको जानना कठिन है। उदाहरण के लिए, इस बात का पता लगाना कठिन है कि अभियुक्त का आचरण आगे चल कर अच्छा रहा या नहीं। और जब तक इस सम्बन्ध में पूर्ण सन्तोष न हो सके तब तक इस बयान का भी कोई मूल्य नहीं। अब हमें यह देखना है कि यदि इस एक बात पर विशेष ज़ोर न दें तो भी यह बयान कुछ काम दे सकता है या नहीं। यदि यह प्रमाणित किया जा सके कि रामकिशोर ने उसकी काफ़ी हानि की थी तथा उस पर छुरे का प्रहार करते समय अभियुक्त उचित क्रोध से उन्मत्त हो रही थी तो उसका काम चल जायगा। इसके लिए परिस्थिति पर प्रकाश डाला जाना और उसी की दृष्टि से गवाहों का बयान लेना ज़रूरी है। क्या अभियुक्त की ओर से पैरवी करने वाले वकील इस प्रकार की गवाही पेश करने को तैयार हैं?

एक वकील ने कहा—हुज़ूर, हमें मंजूर है।

जज ने मुक़दमे में तारीख़ डाल दी।

—:o:—

[३६]

दैनिक पत्रों में कुसुम के बयान की रिपोर्ट पढ़ कर त्रिवेदी-नारायण दंग रह गये। अलीहसन के साथ उसका अनुचित सम्बन्ध नहीं था, यह जानकर उन्हें कुछ सन्तोष हुआ, यद्यपि यह समाचार कि उसने जीवन में एक बार व्यभिचार किया था, और उसी के परिणाम-स्वरूप अलीहसन उर्फ राजाराम की उत्पत्ति हुई थी, निराशाजनक था। फिर भी उन्होंने रामकिशोर को वैसा न समझा था जैसा वह प्रमाणित हुआ, और

उसका वध करके कुसुम ने जिस तेजस्विता का परिचय दिया था वह आनन्दप्रद थी।

त्रिवेदीनारायण आरामकुर्सी के सहारे पड़े हुए यही सब सोच रहे थे कि उनके दो आर्यसमाजी वकील मित्र, जिन्होंने गत पेशियों पर कुसुम की ओर से पैरवी की थी, आ गये। नमस्ते आदि होने के बाद वकीलों ने कुर्सियों पर बैठ कर कहा—आपको हम लोग रामकिशोर की हत्या के मामले में सफ़ाई की ओर से गवाह बनाना चाहते हैं।

त्रिवेदीनारायण—मुझे तो आप लोग न घसीटें तो ही अच्छा हो। मेरा चित्त बहुत खिन्न है।

वकीलों में से एक ने कहा—श्रीमती जी को फाँसी दिल-वाने की इच्छा तो आप की होगी नहीं। यदि उनकी ज़िन्दगी बचा ली जाय तो विश्वास है कि वे समाज के लिए बिलकुल निरुपयोगी न होंगी। किसी अनाथालय या सेवासदन का काम उनकी निगरानी में रक्खा जा सकता है। और आपको कोई कष्ट भी नहीं होने पावेगा, केवल सच्ची बातें अदालत के सामने कह देनी होंगी।

त्रिवेदीनारायण ने कहा—यदि आप लोगों को ऐसा ही आग्रह है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।

अन्य वकील ने कहा—एक और बात का आप ध्यान रखें। आपके नौकरों में से कोई आदमी सरकारी गवाह न

बनने पाये। इससे बड़ी भारी हानि की संभावना है। क्योंकि सरकार की मंशा है कि अभियुक्त को पूरा पूरा बदचलन साबित करके उसको अधिक से अधिक सज़ा दिलाये।

अच्छी बात है, इतना तो मैं ज़रूर ही कर दूँगा। जो कुछ मैंने अख़बारों में पढ़ा है उससे कुछ तो मैं भी सोचता हूँ कि बात उतनी संगीन नहीं थी जितनी मैंने समझा था और एक कपटी आदमी के चक्कर में पड़ कर मैंने धोखा खाया। ख़ैर, अब तो जो हुआ सो हुआ।

एक मित्र ने कहा—अजी साहब, ग़लतियाँ आदमी ही से होती हैं। लेकिन बेईमान और बदमाश आदमी ज़रा सी बात को ऐसा बढ़ा देते हैं कि अनर्थ मच जाता है। इस मामले में भी ऐसा ही हुआ है।

इसके बाद दोनों वकील चले गये। पंडित जी फिर विचार-सागर में डूब गये।
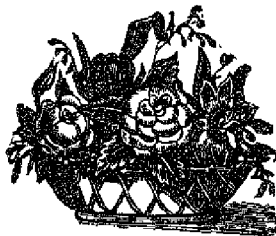
[३७]

सरकार की ओर से अजीब अजीब गवाह पेश किये गये। कोई तरकारी बेचने वाली औरत थी, जो शायद पंडित जी के घर में कभी न गई होगी; कोई पण्डित जी के किसी नौकर के किसी दूर के रिश्तेदार का साथी था जो कभी उसके साथ पण्डित जी के बँगले में गया था। इन सब गवाहों ने यह कहने की चेष्टा की कि अभियुक्त का चालचलन ख़राब था। सफ़ाई की तरफ़ के वकीलों ने जिरह में इन गवाहों को ख़ूब परेशान

किया और काफ़ी संख्या में ऐसी बातें कहला लीं जिनसे यह सिद्ध हो सकता था कि इन लोगों की सारी जानकारी सुनी-सुनाई बातों पर निर्भर है।

सफ़ाई के गवाहों में प्रधान गवाह स्वयं त्रिवेदीनारायण थे। सरकारी वकील ने उनसे इस प्रकार बहस की।

स० व०—क्या अभियुक्त आपकी स्त्री है ?

त्रि०—हाँ।

स० व०—वह आपके साथ कितने दिन से है ?

त्रि०—दस वर्षों से।

स० व०—आपकी वह विवाहिता स्त्री है या रखेल ?

त्रि०—विवाहिता।

स० व०—आपका विवाह कब हुआ था ?

त्रि०—मेरा विवाह हुए सोलह वर्ष से ऊपर हो गये।

स० व०—तो ब्याह होने के बाद छः वर्ष तक आपकी विवाहिता स्त्री अपने मायके में रही, उसके बाद आप उसे घर में लाये। क्या आप लोगों में इस तरह का कोई रवाज है ?

त्रि०—नहीं रिवाज की वजह से ऐसा नहीं हुआ। अपने पिता से रुष्ट होकर मैं कलकत्ते होता हुआ रंगून को चला गया था। वहां कुछ ऐसा फँस गया कि कई वर्षों तक न आ सका।

स० व०—वहां आप कैसे फँस गये, क्या इसको भी स्पष्ट रूप से बता सकते हैं ?

त्रि०—इसे जान कर आप क्या करेंगे ? जो आपके मतलब की बात हो उसे पूछिए ।

स० व०—अच्छा, ख़ैर, तो यह बताइए कि आपकी पत्नी छः वर्ष तक मायके में रही ?

त्रि०—नहीं, वह जहां और जैसे रही वह सब उसने अपने बयान में स्वयं कहा है, मेरे दुहराने की कोई ज़रूरत नहीं है ।

स० व०—अच्छा, आपने अपनी स्त्री को निकाल दिया या वह अपने आप घर से निकल आई ?

त्रि०—नहीं मैंने उसे निकाला और केवल रामकिशोर के भड़काने पर । यदि अलीहसन के साथ अनुचित सम्बन्ध की बात उसने मेरे चित्त पर न जमा दी होती तो मैं उसे कभी न निकालता, क्योंकि वह जिस प्रकार घर का प्रबन्ध करती थी और जिस कौशल के साथ सब से व्यवहार करती थी वह आदर्श था । मैं यह नहीं जानता था कि जीवन में उससे एक ही बार भूल हुई है ।

स० व०—क्या आप अभियुक्त के इस कथन पर विश्वास करते हैं ?

त्रि०—उसके इस बयान में ईमानदारी का स्वर है और उसे कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता ।

स० व०—आपने उसे रात को कै बजे घर से निकाला ?

त्रि०—लगभग ग्यारह बजा होगा।

इस जिरह के बाद सरकारी वकील ने कुसुम से जिरह करना शुरू किया—

स० व०—क्या आप यह बता सकती हैं कि आपने रामकिशोर की हत्या का विचार कब किया ?

कु०—पति के क्रुद्ध होने पर मुझे अपना जीवन व्यर्थ सा जान पड़ा और अपनी इस दुर्दशा का कारण रामकिशोर को समझ कर मैंने उसके जीवन का अन्त करके अपनी समाप्ति भी करने का निश्चय किया।

स० व०—घर से निकाली जाने के कितनी देर बाद आप ने रामकिशोर पर वार किया ?

कु०—बीस-तीस मिनट के बाद।

स० व०—क्या आपके पति ने आपको एकाएक धक्का देकर निकाल दिया ?

कु०—मैं यह नहीं जानती थी कि मेरे पति मुझे घरसे निकाल देंगे, किन्तु उस रात को रामकिशोर की हत्या करने का विचार तो मैंने कर ही लिया था और इसी उद्देश्य से छुरा भी अपने पास रख लिया था।

स० व०—प्रयाग में जब आप त्रिवेणी-तट पर रहती थीं, तब क्या आप किसी पुरुष से बातचीत नहीं करती थीं।

कु०—करती क्यों नहीं थी, लेकिन यदि किसी की नीयत ख़राब होती थी तो उससे किनारा कर लेती थी।

स० व०—क्या ऐसे भी कोई आदमी आपको मिले जिनकी नीयत ख़राब समझकर आपने उनका साथ छोड़ दिया ?

कु०—ऐसे आदमियों में रामकिशोर एक ख़ास आदमी था। इसने मुझे बहकाने का बहुत उद्योग किया।

स० व०—अच्छा, यह बताइए कि जिस एक आदमी के साथ आप का अनुचित सम्बन्ध हो गया था वह कौन था और कहाँ का था ?

कु०—वर्तमान अभियोग से इस प्रश्न का कोई सम्बन्ध है, अथवा आप व्यर्थ ही मुझे परेशान करना चाहते हैं ?

स० व०—नहीं, नहीं, इसी अभियोग से सम्बन्ध है।

कु०—मुझे बताने में कोई आपत्ति नहीं है, क्योंकि अब मैं कोई बात छिपाना नहीं चाहती। मेरे पिता कलकत्ते में एक ऊँचे सरकारी कर्मचारी थे। मैं उन्हीं के साथ रहती थी। वहीं कलकत्ते ही में 'भ्रमर' उपनाम से एक पुरुष ने मेरे पास चिट्ठियां भेजी थीं। और इसी तरह की दिल्लगी में पड़ कर मैंने भी 'कमल' नाम से उन चिट्ठियों का उत्तर दिया था। किन्तु वे अचानक न जाने कहां लापता हो गये। फिर जीवन भर इस पाप का परिणाम भोगने के सिवा मैंने कभी उनकी सूरत नहीं देखी।

त्रिवेदीनारायण कुसुम की इन बातों को बड़े ध्यान से सुन रहे थे। 'भ्रमर' और 'कमल' शब्द कानों में पड़ते ही वे चौंक उठे; कुछ सोचने लगे और जब तक उसकी बातें समाप्त हों तब तक ज़ोर से बोल उठे—क्या कहा ? 'कमल' तुम हो ! 'कमल' तुम हो !!—यह कहते कहते भावावेश से त्रिवेदीनारायण ज़मीन पर गिर कर मूर्छित होगये।

अदालत का और अदालत में उपस्थित सम्पूर्ण दर्शक-मण्डली का ध्यान इस विचित्र घटना की ओर आकर्षित हो गया। कुसुम की जिरह रुक गई, सरकारी वकील, सफ़ाई के वकील आदि सभी लोग तरह तरह के अट-कलतड़ाने लगे।

अदालत की आज्ञा से अर्दली ने त्रिवेदीनारायण का मुँह धोकर पंखा झलना शुरू किया। धीरे धीरे उन्हें होश आया तो उन्होंने कहा—अदालत से मेरी प्रार्थना है कि इस देवी को निर्दोष समझ कर छोड़ दे। इस स्त्री की सारी कठिनाइयों की सृष्टि करनेवाला स्वयं मैं हूँ। घर से भाग कर मैं कुछ दिनों तक कलकत्ते में ठहरा था और यद्यपि यह उस समय मेरी विवाहिता स्त्री थी तथापि अज्ञात रूप से मैंने इसको व्यभिचार में प्रवृत्त करके तथा बाद को होने वाले संकटों का समस्त भार इसी पर डाल करके मैंने ऐसा पाप किया है जिसकी तुलना नहीं की जा सकती। इस नारी को मैंने अपार मानसिक वेदना दी है। आह ! गत सोलह वर्षों

तक इसके चित्त में इस बात का उपस्थित रहना कि मैंने व्यभिचार किया है, हृदय के निगूढ़ स्थल में पति के सम्मुख स्वयं को कलङ्किनी समझना, माँ होकर भी पुत्र को पुत्र की तरह प्यार न कर सकना, यही क्यों उसके साथ अनुचित सम्बन्ध की लोक-धारणा से उत्पन्न होने वाले कष्टों को सहना—आह ! इस सब का उत्तरदायित्व मुझ पर है ? जज महोदय ! रामकिशोर की हत्या का अप्रत्यक्ष कारण मैं हूँ और मेरा अपराध इतना बड़ा है कि उसकी सफ़ाई सैकड़ों वकील भी नहीं दे सकते। ऐसी दशा में इस अभियोग का जो कुछ भी दण्ड हो वह मुझे मिलना चाहिए।

त्रिवेदीनारायण के इस कथन को सुन कर जज महाशय भी थोड़ी देर के लिए सन्नाटे में आ गये। सम्पूर्ण अदालत में ऐसी निस्तब्धता छा गई कि सुई गिरने की आवाज़ भी कान में पड़े बिना नहीं रह सकती थी। थोड़ी देर तक जज साहब बहुत चिन्ताशील हो गये। फिर अभियोग की कार्यवाही को समाप्त करके उन्होंने उच्च स्वर में घोषित किया कि निर्णय तीन दिनों के बाद सुनाया जायगा।

[३८]

नियत तारीख़ पर जज साहब ने अपना निम्न-लिखित निर्णय सुनाना आरम्भ किया—

वास्तव में यह एक पेचीदा अभियोग है। हत्या के पहले अभियुक्त की यथेष्ट मानसिक उत्तेजना के कारण स्पष्ट हैं। यह तो अब निर्विवाद है कि वह एक प्रतिष्ठित कुल की सच्चरित्र स्त्री है। ऐसी स्त्री के सुव्यवस्थित गृहस्थ-जीवन में अशान्ति उत्पन्न करके, यही नहीं, उसके कलंकित हो जाने पर

हिन्दू, विशेष कर ब्राह्मण स्त्री की जो दुर्दशा हो सकती है उस तक पहुँचा करके, रामकिशोर ने अपनी हत्या के लिए स्वाभाविक कारण उपस्थित कर दिया था और मेरा तो यह ख़याल है कि यदि रामकिशोर की सौ ज़िन्दगियां होतीं तो सौ बार उसकी हत्या करना भी, उसके अपराध को देखते हुए, किसी स्वाभिमानिनी स्त्री के लिए अस्वाभाविक न होता।

यह स्पष्ट है कि अलीहसन उर्फ़ राजाराम अभियुक्त और उसके विवाहित पति की संतान है और यह समस्त कठिनाई एक साधारण भूल के कारण खड़ी हो सकी है। त्रिवेदी-नारायण ने अपनी विवाहित स्त्री के साथ कलकत्ते में पति और पत्नी रूप में नहीं, बल्कि प्रेमी और प्रेमिक रूप में सह-वास किया। इस सहवास के समय दोनों की अवस्था क़ानून की दृष्टि से उन्हें बालिग़ सिद्ध करती है, क्योंकि यह मामला सत्रह-अठारह वर्ष के बाद का है और इनमें से स्त्री की उम्र इस समय तैंतीस वर्ष के लग भग है और पुरुष की छत्तीस वर्ष। ऐसी स्थिति में दोनों ने जान बूझ कर पाप कर्म किया और दोनों ही उसके परिणामों को भोगने के लिए बाध्य हैं। अभियुक्त के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि उसे जीवन में आवश्यक से अधिक दण्ड मिल चुका है अतएव मैं अभियुक्त को मुक्त करता हूँ।

इस निर्णय ने कुसुम के महत्त्व को बहुत बढ़ा दिया,

किन्तु, साथ ही काशी आर्यसमाज के सभापति पं० त्रिवेदी-नारायण की स्थिति को बहुत कमज़ोर बना दिया। उन्हें अपने मित्रों की बधाइयों को स्वीकार करते समय बहुत झेंपना पड़ा।

घर में दादी और कमला के हर्ष में शोक भी मिश्रित था, हर्ष इसलिए कि कुसुम छुट कर सकुशल घर आ गई तथा कुल की प्रतिष्ठा बच गई और शोक इसलिए कि राजाराम न जाने कहां चला गया।

दादी की आँखों में आँसू देखकर कुसुम ने कहा—दादी व्यर्थ दुखी मत होओ। ईश्वर मेरे ऊपर अनुकूल होंगे तो राजाराम भी ज़रूर लौट आवेगा।

कमला सामने खड़ी थी। कुसुम की इस आशावादिता से उसे बहुत उत्साह मिल रहा था।

दादी ने आँसुओं को पोंछते हुए कहा—बहू, मैं तो सच कहती हूँ, मेरा भैया आवेगा तो इसी कमला के भाग्य से। मैंने तो जब से जाना कि वह तेरी गोदी का लाल था तभी से यह सोच रही हूँ कि कमला का उससे विवाह होता तो कैसा अच्छा होता।

कु०—मेरी तो न जाने कितने दिनों से यही अभिलाषा थी दादी, परन्तु, तब तो होठों पर ऐसा नहीं ला सकती थी। अब तो ईश्वरके हाथ है। यदि मैं सच्ची औरत हूँ तो ईश्वर मुझे कष्ट भले ही दे लें, लेकिन मेरा लाल मिलेगा ज़रूर।

स्त्रियों ने ज्योतिषी को बुलवाकर पूछताछ की, पंडित जी के आर्यसमाजी विचारों की परवा न करके एक ब्राह्मण को पूजा-पाठ पर भी बैठा दिया ; और भी जो कुछ हो सका सो सब किया। ईश्वर से प्रार्थना की ; आँखों के जल से उन्हें नहलाया ; रोम रोम से राजाराम को वापिस भेज देने के लिए आह्वान किया। पं० त्रिवेदीनारायण ने यह सब करने के लिए समय न निकाल कर अपने संगठन-बल से राजाराम को वापिस बुलाने का प्रबन्ध किया। उन्होंने थाने में हुलिया करवा दी और दो हज़ार रुपये इनाम घोषित कर दिया। किन्तु, यह सब करने पर भी राजाराम का कहीं पता न चला। सब तरह से निराश होकर जब एक दिन त्रिवेदीनारायण घर पहुँचे तब नित्य की तरह दादी और कुसुम उनके पास पूछने के लिए आईं कि कुछ पता लगा या नहीं।

त्रिवेदीनारायण ने कुछ उत्तर नहीं दिया। किन्तु, उनकी आँखों से निकलने वाले आँसुओं ने सब बातें बता दीं। कुसुम ने कलेजा पकड़ लिया, दादी की कमर ही टूट गई और बेचारी कमला की तो आकांक्षाओं का महल ही टूट गया। घर भर में व्याकुलता का भाव फैल गया।

राजाराम को ढूँढ़ने के सब प्रयत्न तो विफल हुए, लेकिन घर में हर एक, नित्य ही, राजाराम के ख़याल में डूबा रहता और यह मानने के लिए तैयार न होता कि वह अब कभी न

मिलेगा। दादी कुसुम का प्रबोध करती तो कुसुम त्रिवेदीनारायण का ढाढ़स बँधाती, लेकिन सच पूछिये तो तीनों ही एक दूसरे को समझाने के योग्य नहीं थे, समय पड़ने पर सभी अधीर हो जाते थे।

राजाराम के वियोग से यों तो सभी को कष्ट था, लेकिन यदि यह कहा जाय कि कमला का कष्ट सबसे अधिक था तो एक दृष्टि से इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। कारण यह कि कुसुम, त्रिवेदीनारायण आदि तो खुल्लमखुल्ला उसके लिए रो धो कर भी अपने हृदय को समझा-बुझा लेते थे, किन्तु कमला के लिए वह साधन भी सुलभ नहीं था। दादी ने राजाराम के साथ उसके विवाह की कल्पना करके तथा उसका यथेष्ट प्रचार करके कमला के मुँह में ताला लगा दिया था, तथा उसकी आँखों को आँसू दिखलाने से मना कर दिया था। ऐसी दशा में भीतर की आग बुझने के कोई लक्षण नहीं थे।

कहावत है कि प्रीति और खाँसी दबाये नहीं दबती, छिपाये नहीं छिपती। कमला का प्रेम भी छिपाने से अब छिप नहीं सका। वास्तव में वह राजाराम को उसी दिन से चाहने लगी थी जिस दिन उसने उसे देखा था। लेकिन उसके प्रेम के रास्ते में बहुत बड़ी बाधा थी। यदि वह आरम्भ से ही राजाराम के रूप में प्रकट होता तो संसार की कोई भी शक्ति शायद उसे अपने प्रेम से विरत न कर सकती। परन्तु जब वही

मनुष्य अलीहसन होकर उसके सामने आया तब अपने हृदय के भावों को दबाने के सिवा यह कुल-बाला और क्या कर सकती थी। राजाराम पर सबने कलंक आरोपित किया, परन्तु कमला ने उस पर से अपना विश्वास नहीं हटाया। उसे पूरा पूरा भरोसा था कि मामी अलीहसन को लड़के की तरह मानती हैं और इसके लिए वह कितनी कृतज्ञ थी, यह कहने की बात नहीं। इसी से जिस दिन लोगों द्वारा सताये जाने के कारण अलीहसन एकाएक भाग गया उस दिन तो अन्न-जल त्याग कर वह कई दिनों के ज्वर की तैयारी कर बैठी थी। ऐसी अवस्था में यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि अलीहसन के राजाराम-रूप में प्रकट होने से उसे कितना आनन्द हुआ होगा, साथ ही उसके वियोग ने उसके हृदय में कैसी पीड़ा का संचार किया होगा। वेदना के वेग को सहने में अशक्त होकर वह फिर बीमार पड़ गई और अपने जिस प्रेम को उसने इतने दिन तक गुप्त रक्खा उसे ज्वरोन्माद की अवस्था में इस प्रकार प्रकट करने लगी—राजाराम ! राजाराम ! अलीहसन ! अलीहसन ! ऐ मेरे प्यारे राजाराम ! कहाँ हो मेरे राजाराम ! हा हा हा ! आदि आदि।

कई दिनों तक कमला की यही अवस्था रही। सब लोगों को निश्चय हो गया कि कमला राजाराम से प्रेम करती है। परन्तु अब किया क्या जाय ? एक ओर तो कमला की चिकि-

त्सा होती थी दूसरी ओर त्रिवेदीनारायण समाचार-पत्रों द्वारा, पुलीस द्वारा तथा अन्य जिन किन्हीं साधनों से सम्भव समझते, राजाराम का पता लगाने की कोशिश करते थे। धीरे धीरे कमला तो अच्छी हो गई, किन्तु, राजाराम का पता नहीं चला। उसके वियोग के कारण घर के सभी लोगों की दशा शोचनीय हो गई। अपनी कोशिशों में पंडित जी असफल होने पर प्रायः उन लोगों पर अपना क्रोध उतारते थे जो उनके आसपास होते और जिन्हें वे राजाराम को भागने के मामले में सहायक समझते थे।

[३६]

त्रिवेदी नारायण के यहाँ से भाग कर राजाराम गंगा के किनारे गया। वहाँ वह इधर उधर घूमता रहा। संध्या का समय था। उसे भूख लग आयी। कुछ रुपये उसके जेब में पड़े थे। पास ही हलवाई के यहाँ से पूड़ी लाकर उसने खाया और गंगा का पानी पिया। उसके बाद सीढ़ियों पर बैठ कर उसने अपना पुराना और प्यारा गाना शुरू किया—

ख़ुदा किया क्यों ज़मीं पै पैदा

जो ठोकरें था सदा खिलाना ?

दिया ही फिर आदमी का तन क्यों,

किसी ने जब आदमी न माना ?

तमाम पेशो आराम में है.

गुज़ारता ज़िन्दगी को कोई।

हमें है दुशवार साँस लेना,

है रात-दिन अश्क ही बहाना।

नहीं समझता कोई कि हम सब,

बने हैं बस मुश्ते ख़ाक से इक।

अमीर को भी ग़रीब को भी,

है एक दिन ख़ाक ही हो जाना।

इसी समय एक बूढ़े साधु वहीं आ गये और चुपचाप गाना सुनने लगे। राजाराम को यह बिलकुल नहीं मालूम हुआ कि यहाँ कोई आ गया है।

गाना समाप्त होने के बाद राजाराम ने ज्यों ही दृष्टि फेरी त्यों ही सामने साधु को खड़े देखकर वह नम्रता से धरती पर गड़ सा गया। चरणों के पास माथा रख कर उसने प्रणाम किया।

साधु ने मुसकरा कर आशीर्वाद दिया और पूछा—बेटा, तुम्हारे ऊपर कोई विपत्ति पड़ी सी जान पड़ती है, नहीं तो

तुम्हारे गाने में इतनी मधुरता न आती। भला बेटा, बताओ तो सही, तुम्हारे ऊपर क्या मुसीबत पड़ी है?

मेरे दुःखों की कहानी बड़ी लम्बी है, महात्मा जी, और आप को उससे कुछ लाभ नहीं होगा—राजाराम ने उत्तर दिया।

साधु ने तुरन्त ही कहा—मुझे लाभ होगा या नहीं, इसे तुम नहीं समझ सकते बेटा! मेरा काम ही क्या है! भगवान का भजन करना और तुम्हारे जैसे दुखी लोगों की सहायता करना। मुझे छोटी और लम्बी कथा में भेद नहीं करना है। लो, मैं यहीं आसन लगा कर बैठ जाता हूँ, तुम अपना पूरा हाल सुनाओ, शायद मुझसे तुम्हारी कुछ सहायता बन पड़े।

यह कह कर साधु ने एक चौड़ी सीढ़ी पर अपना झोला आदि रख कर आसन लगा ही लिया।

राजाराम भी सामने बैठकर बोला—महाराज! मैं बहुत अभागा लड़का हूँ। लड़कपन से ही मेरे माता पिता का कोई पता नहीं।

सा०—अच्छा तो तुम्हारी परवरिश किसने की?

रा०—एक मौलवी साहब ने।

सा०—तो तुम्हें यह कैसे मालूम कि वे तुम्हारे पिता नहीं हैं?

रा०—महाराज! पिता और माता को पहचान लेना तो बिलकुल सरल बात है। प्यार और सहानुभूति सभी लोगों में

नहीं हो सकती। हाँ, माता ज़रूर, मुझे थोड़े दिन हुए, मिल गई। उनकी दया देख कर मैं उन्हें माता से भी बढ़ कर मानता हूँ। वे स्वयं कहती हैं कि मेरी माता वे ही हैं। परन्तु, बात समझ में नहीं आती।

सा०—सो क्या ?

रा०—मैं उनका लड़का किस तरह हुआ सो समझ में नहीं आता ?

सा०—उसमें कठिनाई क्या है ?

रा०—महाराज ! बात यह है कि अपने मौलवी साहब के अत्याचारों से ऊब कर मैंने यहीं के एक रईस के यहाँ नौकरी कर ली। आप तो उन्हें जानते होंगे वे शहर के आर्यसमाज के सभापति हैं।

कहने को तो झोंक में राजाराम यह कह ले गया, लेकिन तुरन्त ही उसने सोचा कि यह सब न कह कर मुझे गोल मोल बातें करनी चाहिए थीं। इसलिए आगे वह जो कुछ कहने जा रहा था उसे रोक कर बोला—महाराज ! देखिएगा, यह बात कहीं प्रकट न कीजिएगा, नहीं तो मेरे ऊपर आफ़त आ जायगी।

तुम इसके लिए निश्चिन्त रहो। मैं तुम्हारा अहित नहीं चेतूँगा, बेटा !

साधु के इस आश्वासन से राजाराम की घबराहट कुछ

कम हो गई। उसने फिर कहा—वहाँ, मालिक के घर में जो मालकिन वह हैं वही मुझसे कहती हैं कि मैं तेरी मां हूँ।

साधु ने ज़ोर से कहा—ठीक तो है, जितने अनाथ बच्चे हैं सभी शीलवती देवी के लिए लड़के ही हैं।

नहीं, नहीं,—राजाराम ने तुरन्त ही कहा—उस तरह की मां नहीं, वे तो कहती हैं कि मैं तेरी जन्मदात्री माँ हूँ।

सा०—अच्छा, फिर क्या हुआ ?

रा०—हुआ तो संक्षेप में यह कि उनके व्यवहार के कारण दूसरे नौकर-चाकर मुझसे ईर्ष्या-द्वेष करने लगे और उनके कारण मुझे वहां से भागना पड़ा। लेकिन मैं सदा यही सोचा करता हूँ कि आख़िर मामला क्या है ? देवी जी मुझे क्यों अपना लड़का बतलाती हैं। और, आपको यह भी बता दूँ कि पंडित जी की कोई सन्तान जीवित नहीं है, एकाध बच्चे हुए, तो होते ही मर गये।

सा०—बच्चा, है तो यह एक पहेली। अब संध्या करने का समय आगया। उससे निबट लूँ तो तुमसे फिर बातें करूँ।

'अच्छा' कह कर राजाराम थोड़ी दूर अलग चला गया और अपना वही प्यारा पुराना गीत गुनगुनाने लगा।

—:o:—

[४०]

संध्या से छुट्टी पाने पर साधु ने राजाराम को फिर बुलाया और कहा—बच्चा, यद्यपि मैं इस नगरी में आज ही बहुत दिनों के बाद—शायद सोलह वर्ष के बाद आया हूँ और मेरे परिचितों में से न जाने कौन मरा होगा, कौन जीता होगा, फिर भी अगर तुझे कोई नौकरी चाकरी करनी हो तो मुझसे बता, मैं कहीं न कहीं तुझे काम दिला दूँगा।

महाराज ! छोटी अम्मा सी मालकिन मुझे कोई मिल नहीं

सकती, इसलिए मैं किसी की नौकरी नहीं करूँगा। किसी तरह पेट न पलेगा तो भीख माँग कर ही खालूँगा।

सा०—ना बेटा, बल्कि तुम्हें यह कहना चाहिए कि किसी तरह पेट न पलेगा तो किसी की चार बातें सहकर भी मिहनत करूँगा और अपने दिन काटूँगा। भीख माँगना भले आदमी का काम नहीं है। तुम अभी लड़के हो, ऐसी बुरी आदतों में तुम मत पड़ो। इससे आत्मा का हनन हो जाता है।

रा०—आत्मा का हनन क्या महाराज? इसे तो मैंने नहीं समझा।

सा०—बच्चा, यह तो देखते ही हो कि कोई चार बातें कहे बिना मुफ़ में एक पैसा भी नहीं देता। अपमान सहते सहते जब बेहयाई आ जाती है तब कहा जाता है कि इस मनुष्य की आत्मा का हनन हो गया।

रा०—महाराज! यदि मैं आप ही के साथ रहूँ तो क्या हर्ज़ है? मेरे दुखी चित्त को आपकी बातों से बहुत शान्ति मिल रही है।

सा०—लेकिन बेटा, मेरे साथ तू अधिक दिन रह नहीं सकेगा। और अगर रहेगा तो यह तेरा शरीर, जो अभी खिला हुआ है, सूख कर काँटा हो जायगा।

रा०—तो क्या हर्ज़ है महाराज?

सा०—नहीं, नहीं, अभी तू मेरे साथ नहीं रह सकेगा। मैं तुझे कल ही किसी प्रतिष्ठित आदमी के यहां काम पर लगा दूँगा।

रा०—परन्तु, काम में मेरा जी न लगेगा, महाराज! छोटी अम्मा के वियोग में मुझे बेहद तकलीफ़ है।

साधु ने हँस कर कहा—तो क्या मेरे साथ रह कर तू बैठे बैठे हलुआ और मालपुआ उड़ाना चाहता है? मैं वैसा अमीर साधु नहीं हूँ, बच्चा। मैं तो भगवान का ग़ुलाम हूँ। उनकी नौकरी में कभी रोटी का एक टुकड़ा मिल भी जाता है, कभी नहीं भी मिलता।

राजाराम ने चकित होकर पूछा—तो महाराज! भगवान क्या मुफ़्त ही में काम लेते हैं, फिर तो वे मेरे मौलवी साहब से भी अधिक कंजूस और अनुदार हैं।

साधु फिर हँस कर बोले—नहीं, नहीं, न वे कंजूस हैं और न अनुदार हैं, उनके समान तो कोई दाता ही नहीं; वे ऐसी चीज़ देते हैं जो संसार में कहीं मिल नहीं सकतीं। लेकिन यह सच है कि वे चीज़ें हलुआ और मालपुआ नहीं हैं।

फिर वह क्या है बाबा जी? राजाराम ने बहुत विनीत भाव से पूछा।

बेटा, तुम उसे समझ नहीं सकोगे, उसका नाम है

आनन्द, शान्ति। जो आनन्द और जो शान्ति किसी करोड़पति को नहीं प्राप्त है वह मुझे प्राप्त है।

राजाराम ने आर्त्त स्वर से कहा—तो शान्ति ही तो मुझे भी चाहिए, महाराज! छोटी अम्मा से अलग होकर भी अगर मैं कहीं शान्ति से रह सकूँगा तो आप ही के श्री-चरणों में।

साधु ने थोड़ी देर तक विचार-मग्न रह कर कहा—अच्छा, अगर तेरा ऐसा ही आग्रह है तो मुझे कुछ आपत्ति नहीं है।

[४१]

तबियत बहलने का कोई उपाय न देख कर कुसुम की उपस्थिति में एक दिन त्रिवेदीनारायण ने कहा—चाची अगर राय हो तो तीर्थाटन करने चलें। यह बात न केवल वृद्धा को बल्कि कुसुम को भी पसन्द आ गई। शीघ्र ही पूरा परिवार तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़ा।

सब से पहले ये लोग हरद्वार को गये। रास्ते में अनेक मनोरञ्जक बातें देखने से कुसुम की तबियत कुछ बहली और

त्रिवेदीनारायण तथा दादी का कष्ट भी थोड़ी देर के लिए हलका हो गया। किन्तु कमला का तो कहीं जी हो नहीं लगता था। कल्पना के राज्य में वह कभी राजाराम से बातें करती, कभी उसे उलहने देती, कभी अपना प्यारा गाना सुनानेको कहती और कभी स्वयं हारमोनियम पर कोई गीत गाकर उसे रिझाने की चेष्टा करती। ये बातें उसे इतनी वास्तविक मालूम होती थीं कि बाहर की सभी वस्तुएँ उसे स्वप्न सी प्रतीत होती थी।

हरद्वार में पहुँचने पर जब सब लोग गङ्गा-स्नान कर रहे थे, उस समय कमला ने दादी का ध्यान एक लड़के की ओर आकर्षित किया। यह लड़का राजाराम से बिलकुल मिलता-जुलता था। दादी ने कुसुम को बताया और कुसुम ने त्रिवेदी-नारायण को। तब तक लड़का गङ्गा में से जल्दी जल्दी निकल कर भागने की चेष्टा करने लगा। त्रिवेदीनारायण ने बड़े ज़ोर से चिल्ला कर कहा—पकड़ो, पकड़ो, इस लड़के को, जाने न पावे। दो तीन आदमियों ने उसे पकड़ लिया और जब तक त्रिवेदी-नारायण बाहर निकले तब तक उनकी घबराहट से भरी हुई ऊँची आवाज़ के कारण इस भ्रम में पड़ कर कि लड़का शायद कुछ चोरी आदि करता रहा हो, वहाँ एक ख़ासी भीड़ जमा हो गई। त्रिवेदीनारायण को निकट आते देख कर लड़का थरथर काँपने लगा, किन्तु जब उसके पास पहुँच कर उन्होंने उसे गोद से लगा लिया तब वह तो भय-मिश्रित अचरज में

डूब गया, साथ ही सम्पूर्ण उपस्थित जनता भी चकित और विस्मित हो गई। शीघ्र ही कुसुम ने वहाँ पहुँच कर उसे गोद से लगाया और पुलकित होकर कहा—बेटा, डरो मत और न अचरज करो, अपने पिता के पैरों पर गिर कर प्रणाम करो। राजाराम त्रिवेदीनारायण के पैरों पर पड़कर रोने लगा। धीरे धीरे दादी भी वहाँ पहुँच गईं। कुसुम ने उसे पंडित जी के पैरों पर से उठा कर दादी से प्रणाम करने को कहा। दादी ने आँखों में आनन्द के आँसू भर कर आशीर्वाद दिया।

थोड़ी दूर पर बैठे हुए एक बूढ़े साधु इस विचित्र दृश्य को बहुत चकित-विस्मित होकर देख रहे थे। एकाएक उनके जी में आया कि चलकर देखें, मामला क्या है। भीड़ ने साधु को आदरपूर्वक स्थान दिया, उनकी ओर त्रिवेदीनारायण ने भी आदर-दृष्टि फेरी। किन्तु उपस्थित जनता ने फिर एक नया दृश्य देखा—पिताजी! पिताजी!! मुझ अधम और पापी को क्षमा करो, आदि कहते हुए त्रिवेदीनारायण उनके चरणों पर दण्ड की तरह लोट गये।

साधु की आँखों से आँसुओं की वर्षा होने लगी। कुसुम, दादी, कमला, राजाराम तथा उपस्थित जनता के कौतूहल का पार न था।

॥ इति ॥

मुद्रक—बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गव, स्टैन्डर्ड प्रेस, इलाहाबाद।

अरुणोदय

[विविध विषय-विभूषित मनोहर
मासिक पत्र]

सम्पादकः—

पं० गिरिजादत्तशुक्ल बी० ए०

वार्षिक मूल्य ढाई रुपया, छः माही डेढ़ रुपया

मिलने का पताः—

अरुणोदय-कार्य्यालय, लेखक-मण्डल, प्रयाग।

गिरीश-कृत

['बाबू साहब']

उपन्यास

मूल्य दो रुपये

इस उपन्यास के सम्बन्ध में डाक्टर रामप्रसाद त्रिपाठी
एम. ए. का लेखक को एक पत्र:—

प्रिय गिरीश जी,

उपन्यास बड़ा रोचक है। इसका प्रमाण यही है कि मैंने उसे एक दिन में ही पढ़ डाला और क्षणभर के लिए भी मुझे कुतूहल-शैथिल्य का अनुभव नहीं हुआ। अतएव यह स्वयं सिद्ध है कि उपन्यास की सबसे मुख्य कसौटी 'रोचकता' पर आपका प्रयास खरा निकला।

चरित्र-चित्रण में भी आपने रचना-चातुरी और कला-कुशलता का अच्छा परिचय दिया है। 'अजीत' के भावों के प्रस्फुटन, उसके मनोविकारों के तारतम्य, उत्साह की तरंगभंगी, आदर्शवाद और यथार्थवाद के झकोरों, राग-विराग की प्रतारणाओं आदि के वर्णन में आपने सराहनीय कौशल प्रदर्शित किया है। उपन्यास की भाषा भी सरल, सुबोध, लचीली और फबीली है। मानसिक विकारों की सूक्ष्म ऊहापोह में भाषा की सरलता और सबलता को संयुक्त रखना आपकी लेखन-कला का सुन्दर प्रमाण है।

भवदीय

रामप्रसाद त्रिपाठी

मुद्र ० भार्गव स्टैन्डर्ड प्रेस, प्रयाग